पक्षी-ग्रंथावली—४

वन-उपवन के पक्षी

[बाग-बगीचों के पक्षियों की पहचान, तथा आकार-प्रकार,
निवास और रहन-सहन आदि का वर्णन]

लेखक
जगपति चतुर्वेदी,
स० सम्पादक 'विज्ञान'

चित्रकार
हरिदास चटर्जी



किताब महल इलाहाबाद

प्रथम संस्करण १९५५

लेखक की अन्य पुस्तकें

विलुप्त जन्तु	तत्वों की खोज में
बिजली की लीला	कीटाणुओं की कहानी
समुद्री जीव-जन्तु	शल्य-विज्ञान की कहानी
वनस्पति की कहानी	अद्भुत जन्तु
जीने के लिए	आविष्कारकों की कहानी
ज्वालामुखी	तारा-मंडल की कहानी
भूगर्भ विज्ञान	शिकारी पक्षी
पेनिसिलिन की कहानी	जलचर पक्षी
वैज्ञानिक आविष्कार भाग १, २	उथले पानी के पक्षी
परमाणु के चमत्कार	बन वाटिका के पक्षी
कोयले की कहानी	अद्भुत जन्तु
विलुप्त वनस्पति	विलक्षण जन्तु

प्रकाशक—किताब महल, इलाहाबाद।
मुद्रक—डिक्सनरी प्रेस, प्रयाग।

दो शब्द

"बन-उपबन के पक्षी" पक्षी-ग्रंथावली की चतुर्थ पुस्तक है। इसके साथ ही पाँचवीं पुस्तक "उथले जल के पक्षी" या पङ्कचारी पक्षी भी प्रकाशित हो रही है। इन पाँचों पुस्तकों से पक्षियों के सम्बन्ध की यह पुस्तकमाला पूरी हुई कही जा सकती है। इन पुस्तकों के संबन्ध में हमें विशेष कुछ कहना नहीं है। इतना तो मानना ही पड़ेगा कि हमारी देशी भाषाओं में पक्षियों या अन्य जन्तुओं के संबन्ध में उस पैमाने पर पाठ्य सामग्री प्रस्तुत नहीं हो सकी है जैसी पक्षियों के संबन्ध में इस पक्षी-ग्रंथावली की पुस्तकों द्वारा हिन्दी-जगत के सम्मुख रोचक तथा विस्तृत विवरणयुक्त सचित्र सामग्री रक्खी जा रही है। मछलियों तथा सरी-सृपों आदि के संबन्ध में शीघ्र ही पुस्तकें प्रस्तुत करने की आशा है। स्तनपोषी जन्तुओं की पुस्तकें तो लगभग तैयार भी हो चुकी हैं। इन सब पुस्तकों में श्री० हरिदास चटर्जी द्वारा निर्मित चित्र विषय को रोचक बनाने में विशेष सहायक हैं।

बन-उपबन के पक्षी में बाग-बगीचों, बस्तियों या विरल जङ्गलों के उन पक्षियों का वर्णन है जो पक्षी-ग्रन्थावली की तीसरी पुस्तक "बन-बाटिका के पक्षी" में नहीं है। श्री० स्टुअर्ट बेकर की फौना आफ ब्रिटिश इंडिया सिरीज की पक्षी संबन्धी पुस्तकों में क्रम संख्या ६५३ से लेकर २००० क्रम संख्या तक की प्रमुख जातियों के पक्षियों का वर्णन इस पुस्तक में है। बीच की क्रम-संख्याओं में से कुछ शिकारी पक्षी नाम की पुस्तक में वर्णित हैं। हमें आशा है कि हमारी इस पक्षी ग्रन्थावली तथा सरल विज्ञान पुस्तक माला को हिन्दी जगत अपना कर विज्ञान-प्रेम का परिचय देगा।

जगपति चतुर्वेदी

विषय-सूची

———

चित्र-सूची

———

पक्षियों की बुद्धि

पशु-पक्षियों में कितनी बुद्धि होती है, यह एक पेचीदा प्रश्न है। जब हम सृष्टि में जीवों के विकास-क्रम पर विचार करते हैं तो हमें दिखाई पड़ता है कि करोड़ों वर्ष पूर्व जब आदि सृष्टि हुई होगी तो क्षुद्र कीट ही अवतरित हो सके होंगे जिनका प्रस्तरावशेष रूप में भी चिन्ह बच सकना कठिन था। धीरे-धीरे कुछ कठोर अंगों के कीट जब विकसित हो सके होंगे तो उनके प्रस्तरावशेष या गतिविधि के कुछ प्रमाण प्राप्त हो सकते थे। किन्तु यह सब सृष्टि ऐसे ही जन्तुओं की रही होगी जिन्हें कीट वर्ग कहा जा सकता है। इनमें कोई अस्थिकंकाल न होता था। रीढ़ की हड्डियाँ अस्थिकंकाल के स्तंभरूप में होती हैं। अतएव इन जन्तुओं में रीढ़ या पृष्ठवंश का अभाव होने से अपृष्ठवंशी या बिना रीढ़ के जंतु नाम पड़ता है।

जब सृष्टि में उन जन्तुओं ने जन्म धारण किया, जिनका शरीर एक अस्थिकंकाल पर अवलंबित रहता और वह कंकाल पृष्ठवंश (रीढ़) के आधार पर बना होता तो वह सारी सृष्टि पृष्ठवंशी कहलाई। आज उसके नाना रूप संसार में पटे पड़े हैं। मछलियाँ भी हैं, मेढ़क भी हैं। गिरगिट छिपकली, गोह, मगर, साँप आदि भी हैं, पक्षी भी हैं तथा अन्त: में माता की कोख से प्राय: सदेह उत्पन्न होकर स्तन का दूध पीने वाले जन्तु भी हैं जिनको स्तनपायी कहते हैं। मछलियाँ जलजन्तु कहलाती हैं। मेढक उभयजीवी हैं। इन दोनों के पश्चात् साँप, कछुए, गोह, मगर आदि को सरीसृप नाम से कुछ उच्चवर्ग का कह सकते हैं। पक्षी इनसे भी कुछ ऊँचे पद के माने जा सकते हैं। स्तनपायी सबसे ऊँचे स्थान पर सृष्टि-क्रम में पद ग्रहण करते हैं। यह आज के विज्ञान द्वारा ज्ञात

सृष्टि के जीवों का क्रमागत पद है। इनकी रचना भी कदाचित क्रमानुसार इसी विधि से उदित या विकसित हुई होगी। किस मूल से कौन सी शाखा निकली, कब निकली और कैसे निकली, ये विषय यहाँ पर वर्णित नहीं किए जाएँगे। वे विकासवाद के प्रसंग हैं।

सृष्टि के विकास-क्रम में यह ज्ञात होता है कि सरीसृपों का जिस प्रारंभिक जन्तु वृक्ष से उदय हुआ उसी प्रारंभिक रूप से पक्षी भी किसी पृथक् शाखा रूप में उत्पन्न हुए। दुग्धपायी भी कालान्तर में उसी मूल वृक्ष से किसी समय क्षीण रूप में जन्म धारण कर पहले अज्ञात से रहे होंगे। बाद में उनमें इतना अधिक विकास होता गया कि सारी धरती पर वे प्रधान रूप में छा गए। हम यह कह सकते हैं कि जहाँ तक बुद्धि का प्रश्न है, उसका बटवारा या उत्कृष्टता का क्रम विकास-क्रम के अनुरूप ही होगा। अर्थात् अत्यन्त हीन पद के कीट वर्ग अत्यन्त निर्बुद्धि ही होंगे। मत्स्य, उभचारी उनसे कुछ सुधरी दशा में होकर अल्प मात्रा में बुद्धि कदाचित् पा सके हों। सरीसृप उससे कुछ अधिक मात्रा में बुद्धि रखते होंगे। फलतः पक्षी इन सबसे अधिक मात्रा में बुद्धि रख कर दुग्धपायी जन्तुओं से होड़ ले सकने योग्य स्थिति कदाचित् रखते हों। परन्तु ऐसा व्यवस्थित क्रम बुद्धि के बटवारे में नहीं ज्ञात होता। चीटियाँ अत्यंत हीन वर्ग के अपृष्ठ वंशी जन्तुओं में हैं। परन्तु बुद्धि की परीक्षा में वे अच्छा अङ्क पा सकती हैं। पक्षी के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट सम्मति प्रकट करने के स्थान पर बुद्धि परखने के कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों की चर्चा करना अधिक युक्तिसङ्गत बात हो सकती है।

डैविड लैक नामक वैज्ञानिक ने चटक (राबिन) पक्षी के सम्बन्ध में एक प्रयोग कर देखा कि चटक पक्षी की भूसी भरी हुई खाल पर एक जीवित चटक आक्रमण करता है तो उसका चोट करने का लक्ष्य वक्षस्थल का लाल भाग होता है। रक्त वर्ण को हटा देने पर भी जीवित चटक उस प्रतिमूर्ति पर ही आक्रमण करता जिसका रूप चटक समान बनाकर

रक्खा गया। साधारणतया किसी भी छोटे-मोटे पक्षी के उड़ भागने पर जीवित चटक उसका पीछा करता है। यदि चटक की खाल या प्रतिमूर्ति पर जीवित चटक को आक्रमण करने का अवसर नहीं दिया जाता तो केवल दो जीवित चटकों के पारस्परिक संघर्ष को देखने से यह कुछ पता नहीं चल सकता था कि वे संघर्ष में क्या-क्या पृथक् प्रतिक्रियाएँ प्रकट करते हैं।

यह कहा जा सकता है कि पक्षी रंग, रूप तथा स्थिति को देखकर अपना व्यवहार निर्धारित करता है, परन्तु इन तीनों बातों का विचार एक साथ नहीं पाया जाता। एक पर्यवेक्षक ने समुद्रकाक या तरंगिका (पेट्रेल) की जाति के पक्षी को अपने घोंसले में एक फूटे अंडे के नोकीले कठोर आवरण के खंड पर अंडा सेने की भाँति ऊपर से छाप कर बैठे देखा, जिसके अन्दर का शिशु-निर्मायक पीत द्रव सूख गया था। कितनी अधिक असुविधा तथा मूर्खता की बात थी किन्तु केवल इतनी सी बात थी कि वह टूटा-फूटा निरर्थक अंडा घोंसले के ठीक स्थान पर पड़ा हुआ था, अतएव मादा उसे छापकर बैठी पड़ी थी। यदि कोई समूचा अंडा निकट ही कुछ इंच दूर रख दिया जाता तब भी वह पक्षी उस समूचे अंडे पर जाकर नहीं बैठता, बल्कि इस खंडित अंडे के स्थान पर ही उसे छापे पड़ा रहता। अनेक पक्षियों के साथ ऐसे प्रयोग को देख लिया गया है कि वे निकट के स्थान पर ही अन्य अण्डे की ओर ध्यान भी नहीं ले जाते।

पक्षियों के इस अविवेक से लाभ उठाकर किसी कारण कोयल अपना अंडा उनके द्वारा सेये और पाले जाने का कृत्य पूर्ण कराती है। घोंसले के अन्दर ही उन पक्षियों के वास्तविक अंडों को तनिक दूर हटा कर कोयल उसके स्थान पर अपना अंडा रख देती है। बस वे पक्षी उस अंडे को ही अपना मान कर सेते हैं। यही नहीं, कोयल का शिशु उत्पन्न हो जाने पर अपने रूप से उन्हें चौंका नहीं देता। वह धीरे-धीरे

उन पालक माता-पिताओं से अपना आकार बड़ा कर लेता है। फिर भी वे पक्षी उस कोयल के स्कंध पर बैठ कर चारा चुगाते रहते हैं।

पक्षियों की बुद्धि की तुलना हमें अपनी बुद्धि के माप से नहीं करनी चाहिए। हमारा मस्तिष्क अत्यधिक प्रारम्भिक रूप से धीरे-धीरे विकसित होता आने के पश्चात् आज इस स्थिति को पहुँचा है। आज यह कहने का कोई आधार नहीं कि मस्तिष्क का और भी अधिक विकास भविष्य में न हो सकेगा। इस दृष्टि से पक्षियों का मानसिक उपकरण प्रकृति के विकासात्मक साधनों से परिस्थिति की पृष्ठभूमि में रचित हुआ है। वे हमारे अपेक्षा अधिक आदेय मानसिक उपकरण ही रखते हैं। यह बात अवश्य है कि कुछ दिशाओं में उनमें विचित्र इन्द्रियग्राह्यता तथा अंत-र्भावना हो।

पक्षियों के कार्यकलाप उनके जीवन की जीवंत आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं। अतएव यह अनुमान हो सकता है कि उनका निर्धारण पक्षियों के मस्तिष्क में होता होगा। उनमें यथेष्ट चेतना रहती होगी। कदाचित् पक्षी यह सोचकर घोंसला बनाते हैं कि उन्हें अंडा देने के लिए स्थान की आवश्यकता पड़ेगी, प्रवास इसलिए करते हैं कि उनको आगामी ऋतु-वैषम्य का पहले से ही अनुमान रहता है। और जल्दी अपेक्षाकृत उष्ण स्थल में पहुँच जाना चाहते हैं। कदाचित् गायन इसलिए ही करते हैं कि उन्हें यह ज्ञात रहता है कि मादा उससे मुग्ध हो सकती है और उसे आसक्त कर प्रणय निर्वाह कर सन्तान वृद्धि का क्रम अग्रसर करना है। किन्तु ऐसी धारणाएँ निर्मूल सिद्ध होती हैं। पक्षी उस अवस्था में भी घोंसले बनाता या प्रणय गीत गाता पाया जा सकता है जब माता-पिता के सम्पर्क बिना ही अल्प आयु से वह मनुष्य के हाथों द्वारा ही पला हो तथा अपनी जाति के किसी पक्षी या उसके किसी कृत्य को देख सकने का उसे अवसर न मिल सका हो। या माता-पिता या हमजोलियों द्वारा किसी भी बात की सीख मिलने की सम्भावना

न हो। उन्हें हमजोलियों द्वारा या माता-पिता द्वारा सीख सकने की क्षमता भी नहीं होती, यह बात तो दूसरी है। इन सब बातों से ज्ञात होता है कि उनके कार्यकलाप कोई लक्ष्य बनाकर नहीं होते।

कुछ भी हो, जन्तुओं की जातियाँ जीवित रह सकने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि उनके कार्यकलाप किसी उद्देश्य की पूर्ति करें। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि लक्ष्य की बात जन्तु द्वारा मस्तिष्क में अनुभव की जाय अथवा जंतु अपने मस्तिष्क में उसकी संयोजना करे। प्रकृति का साधारण विधान यह है कि जन्तुओं के मस्तिष्क इस तरह के निर्मित हों कि किसी निश्चित परिस्थिति में ऐसी अंतःप्रेरणा उत्पन्न हो उठे जिससे वे उस विशेष परिस्थिति के अनुरूप कार्य करने लगाने में प्रवृत्त हो जायँ। यह क्रिया अनजाने रूप में ही उनके द्वारा ठीक इसी प्रकार होती है जैसे हमारे शरीर संचालन में शरीर के अंतर्गत अनैच्छिक पेशियाँ तथा ग्रंथियाँ स्वतः ही योगदान किया करती हैं। भोजन आमाशय में पहुँचते ही आमाशय की ग्रंथियों द्वारा किसी अंतर्व्यवस्था से ही हमारी चेतना से परे पाचक रस की रचना हो जाती है, खाद्य द्रव्य पचने लगता है। रक्त नलिकाएँ भी हमसे चेतन्य रूप में आदेश लिए बिना ही किसी अंतर्भूत व्यवस्था या प्रेरणा से प्रेरित होकर शरीर भर में परिभ्रमण कर जीवन-रक्षित रखती हैं। यही क्रम पशुपक्षियों के बाह्य कार्यों के सम्बन्ध में भी होता है जिसे उनकी बुद्धि नहीं, बल्कि अंतःप्रेरणा का परिणाम कहना चाहिए।

पक्षियों की अंतःप्रेरणा द्वारा कार्यों की मीमांसा की जा सकती है। जंतु अपने वातावरण के साथ छिप सकने की व्यवस्था रखते पाए जाते हैं। यह प्रकृति का साधारण नियम है। बहुत से जंतु ऐसी व्यवस्था निरर्थक रूप में भी रख सकते हैं। दुबक कर छिपने की बात लीजिए। अल्पवय पक्षी इस युक्ति से अपना शरीर ऊपरी वातावरण में छिपा सकते हैं जिससे शत्रु उनको देख न सके और वे अपनी जान बचा ले

जायँ। प्रकृति के अंचल में तो यह विधान ठीक है। प्रायः उनके शरीर का रंग वातावरणों के अनुरूप होता है। परन्तु मनुष्य के सम्मुख कृत्रिम वातावरण, गलीचे, कटी घास के कृत्रिम क्षेत्र में भी वे उसी प्रकार दुबक कर अपना शरीर छिपाने का उपक्रम करते हैं जब गलीचे या घास के क्षेत्र का रंग स्पष्टतः उनके शरीर के रंग से सर्वथा विभिन्न होता है। उसके मध्य उनका शरीर किसी प्रकार छिपा नहीं ज्ञात हो सकता। यहाँ उनकी केवल अंतर्भावना ही दुबकने के लिए प्रेरित करती है। गलीचे या घास के रंग में अपने शरीर का रंग न छिप सकने का विवेक उनमें नहीं हो सकता। कुछ पत्ती शत्रु की दृष्टि से बचने के लिए अपने पंख फैलाकर भूमि पर लेट जाते है मानों कोई आहत पत्ती हो। शत्रु का भय दूर होते ही वे पुनः उड़ भागते हैं। यह भी उनकी अन्तर्भावना का साधारण कृत्य होता है। विवेक का उसमें प्रवेश नहीं होता। इसकी प्रवृत्ति उनमें जन्मजात होती है।

पत्तियों की निर्बुद्धि का नमूना सीढी में लगे आड़े डंडों या इसी प्रकार रक्खी अनेक बल्लियों में से किसी पर घोंसला बनाने का प्रयत्न करना है। वे यह नहीं समझ सकते कि घोंसला बनाने के लिए वह उपयुक्त स्थल नहीं है और निरर्थक प्रयत्न कर एक के बाद एक सीढ़ी के सभी डंडों पर घोंसला बना लेना चाहते हैं। यह तो साधारण बात हुई। परन्तु हम बहुत चतुर कहे जाने वाले पत्ती चोर कौवा (चौरिकाक) की बात लेते हैं। इसकी बुद्धिमत्ता प्रदर्शन करने वाली कितनी ही बातों का उल्लेख पाया जाता है परन्तु यह अपना घोंसला बनाने के प्रयत्न में यह नहीं जान पाता कि उसको व्यर्थ अथक परिश्रम पड़ रहा है। उसे उपयुक्त स्थल न होने पर अपना उद्योग स्थगित कर कहीं अन्यत्र घोंसला बनाने का विवेक नहीं होता। यह पत्ती कोटरों में (वृत्त के तने या डाल के छेदों में) अंडे देता है। उसके अंदर अपना घोंसला बनाने के लिए ऊपर से लकड़ियाँ डालता जाता है जिससे आधार स्थल उपयुक्त बन

सके। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोटर का मुँह तो छोटा ही दिखाई पड़ता है, परन्तु नीचे का छिद्र मामूली न होकर भारी छिद्र या गर्त सरीखा होता है। चोर कौवा तो ऊपर से लकड़ी गिराता जाता है और पेंदे में कोई मंच बन जाने की आशा करता है, परन्तु वहाँ नीचे की ओर छिद्र वैसे ही बड़ा रहता है जैसे किसी कच्चे कुएँ के निचले भाग के भस जाने से नीचे की ओर विशाल गर्त सा बन गया हो। ऊपर से गिराई जाने वाली लकड़ी का कहीं पता नहीं चलता परन्तु मूर्ख चोर कौवा निरंतर उसे भरने के प्रयत्न में असफल होकर भी उद्योग नहीं छोड़ता। एक बार एक छेद उसने जब चुन लिया है तो फिर कितनी भी बाधाएँ पड़ें उस स्थान पर ही उसे अंडे देना है। कितने ही दिनों तक निरंतर लकड़ी गिराते जाने पर उसकी भारी राशि नीचे एकत्र हो हो जाती है। जहाँ इतने दिनों तक परिश्रम करने में उसे असीम क्लान्तता का अनुभव करना पड़ता है, वहाँ बुद्धि से काम लेने पर किसी अन्य कोटर को ढूँढ़ कर कुछ घंटों में ही वहाँ अपना घोंसला तैयार करने की निरर्थकता का उसे अनुभव हो जाना चाहिए था। यह अनुभव न कर सकने का केवल यही कारण है कि घोंसला बनाने के कार्य में वे बुद्धि का उपयोग नहीं करते और न आवश्यकता ही होती है। प्रकृति उनके मस्तिष्क में हमारी अनैच्छिक पेशियों तथा उनका नियंत्रण करने वाले मस्तिष्क की भाँति अंतर्भावना उत्पन्न कर देती है। उस भावना से आँख मूँद कर स्वतः कार्य किए जाते हैं। साधारण रूप में जीवन कार्य चलाने के लिए पक्षियों या पशुओं की वे अंतर्भावनाएँ यथेष्ट कार्यकर होती हैं। पक्षियों की अंतर्भावना के ही परिणामस्वरूप हमें कितने ही पक्षियों के बड़े कुशलता के कार्य देखने को मिल सकते हैं। बया का सुन्दरता-पूर्वक पहले पत्रसूत्रों से बुनकर बनाया घोंसला ऐसी कुशलता के कार्य का अद्भुत नमूना कहा जा सकता है। पत्तियों को सीने, सीने के लिए किसी नर्म रेशे को किसी वनस्पति से प्राप्त करने, फिर उसमें गाँठ देकर

सिलाई खुलने न देने की व्यवस्था कर भी घोंसला बनाते पक्षी हमें मिलते हैं। किसी काष्ठखंड की कूची सी बना कर कोयले के चूर्ण को अपनी लसिका में सिंचित कर घोंसले को भीतर से रंग लेने वाले चित्रक पक्षी भी मिलते हैं। नृत्यशाला सजाकर उसमें नृत्य करने वाले पक्षी दम्पति भी मिलते हैं, परन्तु जिस प्रकार हमारे अनजाने मस्तिष्क का कोई भाग हमारी अंतर्क्रियाओं का नियंत्रण करता है, अद्भुत रूप से शारीरिक यंत्र को सँभाले रखने का विधान रखता है, उसी प्रकार पक्षियों के ये सभी कौशल-प्रदर्शन अथवा आवश्यकता-पूर्ति के दैनिक या असाधारण कार्य केवल प्रकृतिदत्त अंतर्भावना से स्वतः चालित होते रहते हैं। पक्षी ऊहापोह में कभी नहीं पड़ता। वह तो इन अंतर्भावनाओं का दास बनकर ही एक मार्ग का अवलंब कर ये सब कार्य संचालित करता जाता है। इन कार्यों का स्तर चाहे जितना ऊँचा है, कौशल चाहे जितना अधिक प्रतीत हो, परन्तु वे बुद्धिजन्य न होकर पक्षियों की अंतर्भावना के फल होते है। यही कारण है कि चोर कौआ को हम अंतर्भावना से प्रेरित होकर आँख बंद किए ही वृक्ष कोटर को भरते जाने का उद्योग सप्ताहों करते पा सकते हैं। वह विशेष परिस्थिति में अपना विवेक प्रयुक्त कर निरर्थक श्रम से बचने का मार्ग निकाल सकने में सर्वथा अक्षम होता है।

कर्कमैन नामक वैज्ञानिक ने एक विलक्षण प्रयोग किया था। काल शीर्ष गंगाचिल्ली (डोमड़ा) पक्षी में जब सन्तानोत्पादन भावना जागृत हो उठती है तो उसके सम्मुख पत्थर का ढोंका फेंकने पर भी उसे अंडे की भाँति सेने का उपक्रम करते पाया जाता है। कोई टिन का खाली डिब्बा ही फेंक कर उसके निकट कर दिया जाय तो वह उसे ही छाप कर अंडे की तरह सेने बैठ जाता है। इस कृत्य में वह उल्लास का अनुभव करता है। प्रकृति ने जो अंतर्भावना प्रदत्त की है उसका अंध अनुगमन का ही यह परिणाम होता है। अंडे सेए जाने के लिए यह प्रकृतिदत्त

अंतर्भावना उनकी जातियों को रक्षित करने के लिए कितनी आवश्यक है, परन्तु पक्षी अपने अंडे इस बात को समझ कर नहीं सेता कि उससे उसके वंश की रक्षा होती है। बल्कि पशुबुद्धि या अंतर्भावना से स्वतः अंडे पर बैठने या शिशु उत्पन्न होने पर उसे चारा चुगाने में प्रवृत्त होता है। ऐसी अंतर्भावना का अंध अनुगमन दक्षिणी ध्रुव प्रदेशीय पक्षी पेंग्विन में भी काल शीर्ष गंगाचिल्ली (डोमड़ा) की भाँति पाया जाता है। वह जननोत्तेजना के काल में अंडे के स्थान पर कोई वस्तु भी मिल जाने पर उसे सेने लग सकता है। अंडा न हो तो वह कोई हिमखंड ही लेकर सेने बैठ जाता है। यह कैसा विस्मय का व्यापार है। ऐसे उदाहरणों से कितना अधिक स्पष्ट हो जाता है कि पक्षियों में विवेक की भावना का अभाव ही होता है। उनके सारे कार्यकलाप केवल प्राकृतिक प्रेरणा अर्थात् अंतर्भावना से घड़ी की सुई की भाँति कतिपय निश्चित विधानों के अनुरूप संचालित होते रहते है। यदि ऐसा न होता तो टूटे अंडे के निरर्थक भाग, पत्थर के ढोंके, टिन के खाली डिब्बे या हिम खंड तक अंडे के स्थान पर पक्षियों द्वारा सेये जाने का उदाहरण देखने का हमें अवसर कभी भी न मिल सकता।

शाद्वल तुलिका (सीडो पिपिट) तुषार चटक (हेज स्पैरो) तथा काक आदि पक्षी कोयल की प्रवंचना के शिकार बनते हैं। कोयल अपने अंडे उन पक्षियों के घोंसले में रखती है। उन अंडों का कोई विरोध नहीं होता। उन पक्षियों के अंडों के स्थान पर कोयल के अंडे भली भाँति सेए जाते हैं। यह तथ्य पक्षियों की वृत्ति समझ लेने पर स्पष्ट हो जाता है। जिन अंतर्भावनाओं से पक्षी पत्थर, टिन, बर्फ आदि के ढोंके सेने के लिए प्रवृत्त हो सकता है, उन्हीं अन्तर्भावनाओं के वश वे कोयल के बलात् पहुँचाए अंडे भी होते हैं और निकट हा पड़े हुए अपने अंडों की पहचान नहीं कर पाते या अंडों के बाहर फेंक दिए जाने पर कुछ क्षोभ का अनुभव नहीं करते किन्तु इतना ही नहीं, कोयल भी अपने अंडे इन

पक्षियों के घोंसले में रख आने का जो कृत्य करती है, वह उन्हीं प्रकार की किन्हीं अंतर्भावनाओं से प्रेरित होता है जिस प्रकार की अंतर्भावनाओं से दूसरे पक्षी उन्हें सेते हैं। कोयल को बुद्धि रखने का श्रेय नहीं दिया जा सकता। जिस प्रकार अन्य पक्षी नहीं समझ पाते कि वे अपना अंडा सेते या अन्य पक्षी का, उसी प्रकार कोयल भी अपने अंडे यह विचार कर वहाँ नहीं रखती कि उसके सेने के परिश्रम से बचे और दूसरे पक्षी सेकर उसके शिशु का पालन करें, बल्कि अज्ञात रूप से प्रेरित होकर वह अंतर्भावना वश वहाँ रख आती है। यही कारण है कि पक्षी जगत में हमें भयंकर दृश्य भी देखने को मिलते हैं। कोयल के अंडे से जो शिशु उत्पन्न होता है वह पोषित होकर शाद्वल तुलिका, तुषार चटक आदि के नर-मादाओं की अपेक्षा चार गुना या पाँच गुना तक बड़ा हो जाता है, परन्तु उसे उस समय भी ये पक्षी कोई पराया पक्षी नहीं समझते। शिशु कोयल पक्षी इन पालक पक्षियों के शिशु टाँग पकड़ कर बाहर फेंक देता है। पालक पक्षी इन नृशंष कृत्यों का मर्म नहीं समझ पाते। अपने नेत्रों के सम्मुख थोड़ी दूर पर उनका आत्मज शिशु चिल्ला-चिल्ला कर यमपुरी का यात्री बनता रहता है परन्तु उसे उठाकर घोंसले में रख लेने का ध्यान इन पक्षियों को नहीं आता। वे उसके निकट भी नहीं फटकते।

जिस प्राणी में बुद्धि होगी वह अपने शिशु की ऐसी उपेक्षा कर अन्य शिशु का पोषण करने में प्रवृत्त नहीं हो सकता परन्तु ऐसे उदाहरण पक्षियों की बुद्धिहीनता स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं। कोई माता अपने गर्भजात शिशु को सड़क पर बिलखता पड़ा रहने दे और अन्य मानव सन्तान को लाड़-प्यार कर पालती रहे तो हमें जितना अधिक विस्मय हो सकता है वैसा ही विस्मय हमें इस पक्षी जगत के कृत्यों पर भी होता परन्तु उनमें केवल अन्तर्भावना के अन्ध अनुगमन से ऐसे दृश्य उपस्थित होते हैं। ये पक्षी अपना या पराया शिशु नहीं देखते, बल्कि यही देखते

हैं कि उनके घोंसले में निर्दिष्ट स्थल पर कौन-सा शिशु है। उसी का उन्हें पोषण करना है। उस स्थान या स्थिति में पड़े शिशु की रक्षा और पोषण की अन्तर्भावना ही उन्हें मिली होती है। इसके आगे वे कुछ तर्क-वितर्क कर किस प्रकार अपना पराया समझें।

पक्षियों को कुछ सीख सकने में सर्वथा अक्षम नहीं कहा जा सकता परन्तु सीख सकने की मात्रा बहुत ही न्यून होती है। उनका अधिकांश जीवन व्यापार बिना सिखाये ही चलता है। उड़ना उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कृत्य है। परन्तु उसे भी उन्हें माता-पिता से सीख कर वायु में उड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती। माता-पिता पक्षी तो उनके उड़ने की अवस्था समझ कर घोंसले से नीचे ढकेल भर देते हैं। शिशु पक्षी पहले कुछ किंकर्तव्यविमूढ़ से ज्ञात होते हैं। परन्तु क्षण भर बाद ही किसी प्रकार पंख फटफटा कर अपना शरीर वायु में सँभाल लेते हैं और प्रकृतिदत्त अन्तर्भावना से ही स्यंभू उड़ाकू बनकर शेष जीवन वायु विहरण कर व्यतीत करते रहते हैं।

प्रत्येक पक्षी जाति का विभिन्न स्वभाव होता है। कोई सदा भागदौड़ करता रहता है, कोई कुछ शान्त और गम्भीर होता है। किसी में भीरुता होती है तो कोई बिल्कुल निडर होता है। एक ही जाति के विभिन्न पक्षियों की प्रकृति में अन्तर भी एक साधारण बात है। एक ही जाति की कोई मादा अंडे के निकट किसी आगन्तुक के आते ही उड़ भागती है, दूसरी ऐसी भी हो सकती है कि निकट से उसका भली भाँति अवलोकन करते रहने पर भी उसे घबराहट नहीं होती। रक्त कण्ठ मज्जुक (रेड थ्रोटेड ड्राइवर) अंडे पर से आगन्तुक के आगे तुरन्त भाग उठने वाला पक्षी है। परन्तु एक पर्यवेक्षक ने इसी जाति के एक मादा को ऐसा देखा जो बरबस पैर से भगाये जाने पर ही अंडे से दूर हट सकी।

सौन्दर्य वृद्धि या विचित्रताओं के दृश्य भी पक्षी जगत में उल्लेखनीय हैं। एक अमेरिकीय शलभाश (फ्लोकेंचर) पक्षी अपने घोंसले में एक

साँप की केंचुल सजाता है। यह कल्पना की जा सकती है कि यह व्यवस्था वह आक्रामकों को दूर रहने के लिए ही रखता होगा जो वहाँ साँप होने की आशंका कर भयभीत हो जायँ। परन्तु यूथिक बाज (बुजर्ड) तथा सुपर्ण (चील) आदि शिकारी पक्षी अपने घोंसले में हरी पत्तियों युक्त टहनियाँ लाकर रखते और उन्हें समय-समय पर बदलते दिखाई पड़ते हैं। अनेक पाणविक (प्लोवर) पक्षी घोंघे तथा चमकीले कंकड़ अपने हल्के आखातनुमा भूस्थित घोंसले के किनारों पर जमाते पाटते जाते हैं। यह छोटा गड्ढा ही उनके लिए अंडा देने का घोंसला होता है। किसी आदि कालीन सौन्दर्य वृत्ति का अवशेष ही उनकी अन्तर्भावना में रहकर ऐसे कृत्य करने में उन्हें प्रवृत्त करता होगा। इसी के फलस्वरूप दध्यक (मैगपाई), काक, तथा चोर कौवा (जैकड़ा) को सुन्दर चमकीली वस्तुएँ लालाकर घोंसले में संचित करते देखा जाता है। ये भावनाएँ न्यूनाधिक भी होती हैं। एक पाणविक पक्षी की जाति में ही कुछ पक्षी तो अपने घोंसले की अत्यधिक सौन्दर्य वृद्धि करते हैं, कुछ बिलकुल ही न्यून करते किन्तु अधिकांश साधारण रूप में सजाते हैं।

पक्षी जननकाल में अपने जोड़े को आकृष्ट करने के लिए अनेक रूप के गायन, नृत्य, भावभंगी या कुछ वस्तुओं के आदान-प्रदान की क्रिया करते हैं। दक्षिण ध्रुव देशीय पक्षी पेंग्विन हिमाच्छादित प्रदेश में रहता है। अतएव अंडा देने के लिए घोंसला बनाने का आधार केवल पत्थर के ढोकों को पाता है। नर पेंग्विन उन्हें एकत्र कर मादा के लिए एक घिरौंदा-सा बना देता है। यह जनन-कार्य का प्रारंभ सा होता है। परन्तु इसके भी पूर्व पेंग्विन को पहले जोड़ा निश्चय करना पड़ता है। इसके लिए नर आमत्रण स्वरूप एक पत्थर का ढोंका मादा के सम्मुख लाकर देता है। कदाचित् कुछ अनुनय-विनय के पश्चात् इस प्रेम भेंट को स्वीकार कर मादा उसको अपने जनन-कार्य में साथी बनाती है। किन्तु यह भी देखा गया है कि जननोत्तेजक वृत्ति में होने पर जोड़ा न

बना सकने पर नर पेंग्विन किसी कुत्ते या मनुष्य को ही पथरीले ढोंके की प्रेम-भेंट समर्पण करने का कृत्य कर दिखाता है। उसकी बुद्धिहीनता का यह ज्वलंत उदाहरण है।

नर पेंग्विन को प्रायः सैकड़ों गज की दूरी से परिश्रमपूर्वक मुख में रखकर पथरीले ढोंके घोंसला बनाने के लिए एकत्र करने पड़ते हैं। यह श्रमसाध्य कार्य है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई नर पेंग्विन परिश्रम से बचने के लिए किसी पड़ोसी के ही एकत्र किये ढोंकों में से कोई ढोंका चुरा लाता है। जब इसका पता लग जाता है तो इस चोरी के लिए सारा पेंग्विन दल हंगामा मचा देता है और वह चोर पेंग्विन सारे दल द्वारा दंडित होता है।

पेंग्विन पक्षी जिस भू क्षेत्र में रहते हैं, वहाँ पहले के युगों में अन्य जन्तु भी रहते होंगे, परन्तु तुषार युग के आगमन से कदाचित् जीवन कठिन हो गया और अन्य सभी जन्तु भाग कर जीवन रक्षा करने लगे या वहीं नष्ट हो गये परन्तु यह पक्षी न तो उड़ या दौड़कर भाग सकता था और न बहुत लम्बी जल यात्रा ही कर सकता था। अतएव वहीं पड़ा रह कर अपने वंश की रक्षा करने का प्रयत्न करने लगा। इस जीवन-सङ्घर्ष में पेंग्विन जीवित रहने में कठिनाई से सफल हो सका। इस जीवन सङ्घर्ष में विजयी हो सकने में एक कारण कदाचित् अपने शिशु के प्रति माता पेंग्विन का अगाध प्रेम है। माता पेंग्विन अपने शिशु के लिए अपार वात्सल्य प्रेम रखने के कारण उसकी रक्षा के लिए अपना प्राण हथेली पर रख कर आपदाओं का सामना करती है। पर्यवेक्षकों ने देखा है कि इस अटूट स्नेह के ही कारण माता पेंग्विन अपनी सन्तान के दो वर्ष की आयु के, लगभग पूर्ण वयस्क हो जाने तक मुख में चारा चुगाया करती पाई जाती है।

पक्षियों के सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि वे दुर्बल स्मरण-शक्ति ही रखते हैं। किसी दूसरे पक्षी के पहचानने की जहाँ तक

बात है वह केवल छः या सात दिन तक स्मरण रखना भी कठिन हो सकता है। अधेड़ पक्षी तो इतनी अवधि तक भी स्मृति नहीं रख सकते। शिशु पक्षी अवश्य ही अपने माता-पिता को उस अवधि से अधिक तक स्मरण रख सकते हैं जितने समय तक माता-पिता अपने शिशु की स्मृति रख सकते हैं। एक लोमहर्षक उदाहरण विशेष उल्लेखनीय है। एक गङ्गाचिल्ली (डोमड़ा) पक्षी का शिशु भूल गया। कुछ दिनों बाद उसने अपने घोंसले में प्रवेश करने का प्रयत्न किया किन्तु माता ने उसका विरोध किया और बाद में उसे खा गई। इसका कारण केवल यह था कि अपने शिशु को पहचान सकने की स्मरण-शक्ति उस अवधि तक उसमें नहीं रह गई थी। एक अन्य तथ्य भी स्मरणीय है। पेंग्विन जल में निरन्तर मछली को आहार बनाते हैं। मछली को पानी से झपट कर तो खा जाते हैं किन्तु कोई मछली भूमि पर पड़ी हो तो उसे खाने की बुद्धि उनमें नहीं होती। वे स्मरण नहीं रख पाते कि भूमि पर पड़ी वही मछली उनका एक मात्र आहार है।

अबोध मानव शिशु अपनी परछाईं देखकर कभी-कभी भय खाते देखे जाते हैं। ऐसी भ्रांति पक्षियों में भी पाई जाती है। एक पर्यवेक्षक ने एक पक्षी को शीशे लगी खिड़की तक उड़ जाते देखा। खिड़की के शीशे में उसे अपनी परछाईं दीख पड़ी। बस क्या था, वह बार-बार उस प्रतिद्वंदी पक्षी को सामने समझ कर शीशे पर चोंच मार-मार कर प्रहार करने लगा। जब खिड़की पर से परदा हटा दिया गया और पक्षी को शीशे में अपना प्रतिबिम्ब देख सकना सम्भव हुआ तभी वह शान्त हुआ।

कुछ उदाहरण ऐसे हैं जो पक्षियों की अपेक्षा चीटियों और मछलियों को अधिक बुद्धिमान सिद्ध करते हैं। चक्रव्यूह या भूलभुलैया-सा बना कर जन्तुओं को ठीक मार्ग ढूँढ़ने की शिक्षा दी जाती है। मान लीजिये एक नली है, उसमें से फिर अगल-बगल दो नलियाँ फूटकर दो ओर

जाती है। एक केंचुआ नली में चलना प्रारंभ करता है। जहाँ से शाखा नलियाँ फूटी हैं, उसे दो मार्ग मिलते हैं। वह उन दोनों में से किसी एक में जा सकता है। कुछ ऐसा प्रबन्ध रक्खा जाता है कि किसी एक ओर की शाखा नली में जाने पर केंचुये को उसकी अन्तिम छोर पर बिजली की धारा का धक्का पहुँचाया जाय। मान लीजिये दाईं ओर जाने पर बार-बार केंचुए को बिजली का धक्का खाने को मिलता है। परन्तु बाईं ओर ऐसी बाधा नहीं है। अतएव कुछ बार धोखा खा लेने के बाद केंचुआ केवल बाईं ओर जाना सीख जाता है। इसी तरह छः भुलावे के मार्ग की भूलभुलैया में ठीक मार्ग पकड़ने की परीक्षा में कबूतरों को सात बार प्रयत्न कराने पर कुछ सफलता मिली किन्तु चींटियाँ उसे सहज ही पार करने में सफल हो सकीं। ऐसी परीक्षाओं में अधिकांश पक्षी निर्बुद्धि सिद्ध होते हैं। मुर्गी के बच्चे को मछली से भी कम सफलता प्राप्त करते पाया गया।

पक्षियों की दृष्टि शक्ति तीव्र कही जाती है। वे विभिन्न ढाँचों को पहचान सकने में समर्थ जान पड़ती हैं। मुर्गी के बच्चे को वर्ग, वृत्त तथा त्रिभुज में अन्तर जान सकने में चूहे की अपेक्षा अधिक सफल पाया जा सका। रंग की भी कुछ विभिन्नता पहचान सकने में सफल दिखाई पड़ते हैं। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि पक्षियों को गिनती कर सकने में समर्थ पाया जा सका है। आज की कुछ असभ्य मानव जातियों में पाँच तक गिनती करने की क्षमता का अभाव पाया जाता है, परन्तु पक्षी गिनती करने में उनसे आगे निकले सिद्ध होते हैं।

एक परीक्षण में मुर्गियों को सिखलाया गया है कि दाने की पंक्ति में से प्रत्येक तीसरे दाने को चुग ले। शेष दो दाने चिपका कर रखे होते। ऐसी सीख दे लेने के बाद जब बिना चिपकाये ही सब दानों की पंक्ति बनाई जाती तो पंक्तियों में से केवल तीसरे दानों को वे खा जाती।

ऐसी किसी शिशु को ट्राफी या छोटी मिठाइयों के सम्बन्ध में दे सकने में सफलता प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती।

मुनरो फाक्त नाम के प्रसिद्ध जन्तु विज्ञानवेत्ता ने एक परीक्षण का उल्लेख किया है जिसमें द्रोणकाक तथा तोते एकाकी रूप में दाना चुगाये जाते तो वे छः दानों तक को चुन कर खा जाते, किन्तु सातवाँ न छूते, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि पंक्ति में सातवाँ दाना चिपका कर रक्खा है। इस तरह के वे सात तक गिन सकते थे। इससे भी अद्भुत दृश्य देखा गया। कबूतरों को केवल पाँच दाने चुग लेने का अभ्यास कराया गया। इससे न्यून या अधिक दाना उन्हें नहीं चुगने दिया जाता। इतना सीख लेने पर एक गेहूँ के भंडार के निकट तीन दाने छीट दिये गये। एक कबूतर ने तीनों दाने चुग लिए। फिर वह गेहूँ की ढेरी में गया और वहाँ से दो दाना चुग लिया। पाँच का योग उसने पूरा कर लिया। यह विस्मय की बात ही थी।

—:o:—

कांचन वंश

भारत कांचन

स्था० नाम—पीलक (हि०), पावसे (महा०), पश्नूल (काश्मीर)

कांचन या पीलक वंश के पक्षी पुरानी दुनिया के उष्ण तथा शीतोष्ण कटिबंध के देशों में पाये जाते हैं। इनकी अनेक जातियाँ हैं। अमेरिका में भी दो जातियाँ पाई जाती हैं।

कांचन वंश की एक प्रजाति कांचन नाम से ज्ञात है। इसकी पाँच भारतीय जातियाँ हैं। भारत के अधिकांश में ये जातियाँ पीलक नाम से



भारत कांचन

ही ज्ञात है। इस प्रजाति के पक्षियों का रङ्ग पीला और काला होता है। केवल एक जाति का रंग लाल और काला होता है। अल्पायु पक्षियों में

उदर भाग में बहुसंख्यक रेखाएँ होती हैं। उन रेखाओं का चिन्ह कुछ दिनों तक उनके शरीर के परों के रङ्ग में बना रहता है। नर पक्षियों में तो द्वितीय वर्ष के अन्त तक ही वे रङ्ग बचे रहते हैं, परन्तु मादा पक्षियों में वे चिन्ह कुछ अधिक समय तक दिखाई पड़ते हैं।

इस प्रजाति के पक्षियों का चंचु सिर की लम्बाई के बराबर होता है। चंचु का सिर मुड़ा तथा दाँतेदार होता हैं। नाक लम्बोतरी तथा खुली होती है। सिर सदा ही शिखा-शून्य होता है। पङ्ख लम्बे तथा नुकीले होते हैं। पूँछ पङ्ख की अपेक्षा अधिक छोटी होती है। थोड़ी-थोड़ी पतली भी होती जाती है। मुख्य पाद या गुल्फ (पंजे से लेकर पहले मोड़ तक का पैर) छोटा ही होता है।

भारत कांचन जाति का आकार मैना के बराबर होता है। पङ्ख की लम्बाई बन्द रूप में साढ़े पाँच इञ्च, चोंच की लम्बाई लगभग एक इञ्च होती है।

भारत कांचन चमकीले पीले वर्ण का होता है। पङ्खों तथा पूँछ का रङ्ग काला होता है। आँख को आच्छादित करती एक काले रङ्ग की पट्टी भी छोटे आकार की होती है। मादा का रङ्ग प्रायः नर से कुछ धूमिल तथा हरापन युक्त होता है। बाग-बगीचों में वृक्षों पर अकेले या जोड़े रूप में रहता है।

भारत कांचन का प्रसार समस्त भारत खंड में कन्याकुमारी अन्तरीप से लेकर हिमालय की ५,००० फुट ऊँची श्रेणी तक पाया जाता है। यह मध्य एशिया में ताशकंद के ६० मील उत्तर पूर्व तक पाया जाता है पूर्वी बंगाल (पाकिस्तान) में विरला ही पाया जाता है। बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में बहुसंख्यक मिलता है। हिमालय तथा उसकी तराई में यह केवल सन्तानोत्पादन के लिए मार्च से सितम्बर तक रहता है। अतएव वहाँ के लिए इसे स्थानीय रूप का प्रवासी कह सकते हैं, परन्तु अन्य सभी स्थलों में यह स्थायी निवासी या बारहमासी होता है। उन स्थानों

में प्रायः मई जून में अंडे देता है। इसका घोंसला नर्म घासों तथा रेशेदार वस्तुओं से सघन रूप में गहरे लम्बोतरे गड्ढे की भाँति होता है। उसमें कपड़े, चिथड़े, पत्ते आदि भी मिले होते हैं। जिन टहनियों से यह लटका होता है उनके चारों ओर ये पदार्थ लपेटे होते हैं। भीतरी अस्तर पत्तियों का ही होता है। बागों, फुलवाड़ियों या सड़क पर के वृक्षों में यह प्रायः ६ फुट से लेकर बीस फुट की ऊँचाई तक किसी बाहर निकली हुई डाल पर अपना घोंसला बनाता है। कभी-कभी इससे भी अधिक ऊँचाई पर घोंसले पाए जा सकते हैं। दो या तीन अंडे एक ऋतु में दिए जाते हैं। उनका रंग श्वेत किन्तु काली या रक्तिम भूरी चित्तियों युक्त होता है। प्रौढ़ावस्था का परिधान या स्थायी परों का रंग प्राप्त किए बिना भी नर पक्षी सन्तानोत्पादन में प्रवृत्त हो सकता है। अतएव कभी-कभी पिता-पुत्र दोनों का ही रंग माता या मादा पक्षी-सा ही ज्ञात हो सकता है। प्रौढ़ नर से शिशु पक्षी तथा मादा पक्षी का रंग भिन्न होता है। नर और मादा दोनों ही अपने घोंसले बनाने में भाग लेते हैं। शिशु के पोषण में भी दोनों का हाथ होता है।

भारत कांचन या पीलक पक्षी को ऊँचे वृक्षों, आम, बरगद, इमली तथा तून आदि में उड़ते-फिरते देखा जा सकता है। यह विचित्र उड़ान उड़कर एक डाल से दूसरी डाल तक फुदकता फिरता है। इसका आहार फल, झरबेरियाँ, बरगद, पीपल आदि के गोदे (फल) होते हैं। यह अनेक प्रकार के कीड़ों तथा कुछ फूलों का पराग भी खाता है।

मैदानों के अतिरिक्त हिमालय की ५००० फुट ऊँची श्रेणी तथा दक्षिण भारत की ४००० फुट ऊँचे पर्वत तक पाया जाता है परन्तु जाड़े में हिमालय से प्रवास करने पर २००० फुट से अधिक ऊँचाई के स्थल पर नहीं दिखाई पड़ता। इसकी "ची-याह, ची-याह" की मीठी बोली प्रायः सुनाई पड़ती है।

भारत सुग्रीव कांचन

स्थानीय नाम—पीलक, जरदक (हि०), पिरोला (गोरखपुर)

सुग्रीव कांचन का आकार मैना के बराबर होता है। उसके शरीर की लम्बाई दस इंच, पंख की लम्बाई लगभग साढ़े पाँच इंच, दुम की लम्बाई साढ़े तीन इंच, मुख्य पाद (गुल्फ) की लम्बाई एक इंच और चंचु की लम्बाई एक इंच से लेकर १$\frac{1}{8}$ इंच तक होती है।

इस पत्ती का रंग सुनहला पीला होता है किन्तु पूर्ण सिर हनु कंठ तथा अग्र वत्तस्थल का रंग बिल्कुल काला होता है। पंख और दुम में भी काला रंग होता है। नर और मादा का रंग रूप समान होता है, परन्तु मादा के सिर का रंग कुछ धूमिल होता है। माथे का रंग पीला तथा सिर के ऊपरी भाग का काला अंश कुछ पीली रेखाओं युक्त होता है। पंख तथा दुम के रंग भी कुछ हल्के होते हैं तथा पूँछ पर कुछ हरे रंग की पुट होती है। नर की आँख का कोया गहरा लाल तथा चोंच गुलाबी या नारंगी गुलाबी होती है। मादा की आँख का कोया कभी भी उतना गहरे रग का या चमकीला लाल नहीं होता। नवजात पत्ती का रंग मादा समान ही होता है, परन्तु सिर का रंग अधिक काला होता है।

भारत सुग्रीव कांचन का प्रसार लगभग पूरे भारत में हैं। केवल त्रावणकोर के भी दक्षिण के भाग तथा पश्चिमी राजपूताना में नहीं होता। पश्चिमी पाकिस्तानी भूभाग में भी नहीं होता। भारत के आसाम, मनीपुर से भूभागों, बर्मा, उत्तरी मलाया के प्रदेश, श्याम (थाईलैंड), कोचीन चीन तथा अन्नाम तक पाया जाता है। भारत महासागर में स्थित ऐंडमान द्वीप में भी यह पाया जाता है।

भारत सुग्रीव कांचन अपने अधिकांश प्रसार क्षेत्र में फरवरी से जुलाई तक सन्तानोत्पादन करता है। अप्रैल तथा मई में अधिकांश अंडे दिए जाते हैं। इसके घोंसले साधारण कांचन समान होते हैं।

घोसलों को कुछ अधिक भव्य तथा छोटे आकार का देखा जाता है। अंडे छोटे होते हैं तथा उनकी पृष्ठभूमि में अधिक गुलाबी रंग होता है। चित्तियाँ हल्के लाल भूरे या गहरे लाल रंग की हो सकती हैं, परन्तु काली कभी नहीं होतीं। दो या तीन या कभी-कभी चार अंडे तक देता है। इसका स्वभाव भारत कांचन सा ही होता है, किन्तु यह उतना शर्मीला नहीं होता। पालतूपन की मात्रा विशेष होती है। यह बस्तियों के आस-पास वृक्षों पर रहता है।

—: ० :—

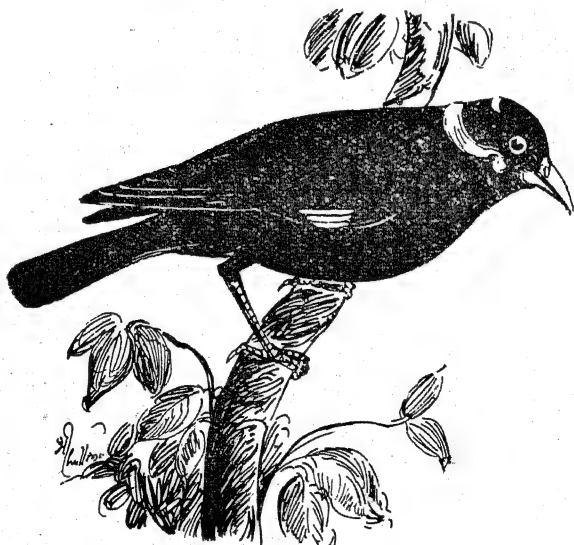
रोपणाका वंश

भारत मदनसारिका

स्थानीय नाम—पहाड़िया मैना (हि०), दाव मैना, मैना गाशिम (कच्चरी)

भारत मदनसारिका मैना से कुछ बड़ी होती है। इसके शरीर की लम्बाई १५$\frac{१}{२}$ इंच, पंख की ६$\frac{१}{२}$ इंच, पूँछ की ३$\frac{१}{४}$ इंच, गुल्फ (मुख्य पाद) की १$\frac{१}{३}$ इञ्च, तथा चोंच की लम्बाई एक इञ्च होती है।

इसके शरीर का रङ्ग चमकीला काला होता है। चोंच तथा पैरों का रंग पीला होता है। आँख के नीचे पर (पतत्र) हीन नग्न स्थल होता



भारत मदनसारिका

है, जो चमकीले नारंगी पीले रंग का होता है। सिर पर भी कुछ नग्न भाग इसी रङ्ग का होता है। नर और मादा का रूप समान होता है। घने जङ्गलों में इस पक्षी के जोड़े या झुंड शोर मचाते मिल सकते हैं। चोंच की छोर पीली और मूल भाग नारंगी होता है।

भारत में भारत मदनसारिका या पहाड़िया मैना के तीन प्रसार क्षेत्र हैं। पहला क्षेत्र कमायूँ से लेकर आसाम तक हिमालय में २५०० फुट तक ऊँचे पर्वतों का है। दूसरा क्षेत्र छोटा नागपुर के दक्षिण का भूभाग है जिसमें दक्षिणी पूर्व मध्यप्रदेश भी सम्मिलित है। तीसरा क्षेत्र पश्चिमी घाट का ५००० फुट की ऊँचाई तक उत्तर में कनारा तक फैला भाग है; भारत के बाहर पूर्व में श्याम (थाईलैंड) कोचीन चीन तथा अन्नाम तक यह पाया जाता है।

पहाड़िया मैना के कान पर मांसल लम्बा अर्बुद या लटकन होता है। उससे इसकी पहचान होती है। इसके शरीर का आकार भी पहचानने में सहायक होता है। यह घने पहाड़ी बन का पक्षी है। दक्षिणी-पश्चिमी भारत के प्रसार क्षेत्र में यह कहवा के बगानों में ऊँचे-ऊँचे वृक्षों पर पाया जाता है। जोड़े रूप या २० तक के झुंड में यह पक्षी देखा जाता है। अंजीर सरीखे सुस्वादु फलों का रसास्वादन करने में वाध्रीणस (घनेश) तथा हरिताल (हारिल) आदि अन्य फल भक्षी पक्षी भी हिले मिले रह सकते हैं। जङ्गल में इनका कलरव गुंजायमान रहता है। उड़ते समय हारिल सुग्गे की भाँति ये भी हहास का शब्द उत्पन्न करते हैं। मदनसारिका को लोग बड़े ही प्रेम से पालते हैं। यह स्वर का शीघ्र अनुकरण करने लगता है। यह शीघ्र पालतू बन जाता है और मनुष्य की बोली दुहराने लगता है। सेमल (शाल्मली) पुष्प या उसी प्रकार के अन्य पुष्पों का मधुपान करने में भी यह प्रवृत्त होता है। इस प्रकार यह उन पुष्पों में परागण क्रिया (पुंकेसर को रज कण तक पहुँचाने) में सहायक बनता है।

मदनसारिका अप्रैल और मई में २५०० फुट तक ऊँचे पर्वतीय स्थानों या कभी-कभी ४००० फुट ऊँचे पर्वतों में अंडे देता है। यह घोंसला बनाने के लिए प्रायः सूखे सड़े-गले वृक्षों को चुनता है। हरा वृक्ष ही हो तो उसकी किसी सूखी या सड़ती गलती डाल को घोंसला के उपयुक्त समझता है। यह डाल के कोटर में प्रति वर्ष एक स्थान पर ही अंडे देता है, यदि कोटर ठीक वही न भी हो तो कम से कम डाल प्रति वर्ष वही होगी। जंगलों के साफ करने पर बीच-बीच में बड़े-बड़े वृक्षों या घने जंगलों, बाँस तथा वृक्षों के मिश्रित कुंजों में अंडा देने का स्थान बनाता है। कोटर बनाने के लिए चोंच और चंगुल दोनों का ही उपयोग करता है। दो या तीन अंडे एक साथ दिए जाते हैं। अंडों का रङ्ग गहरा नीला तथा लाल भूरी या कत्थई चित्तियों युक्त होता है।

मदनसारिका दीर्घजीवी पक्षी है। यह पालतू रूप में बीस वर्ष तक जीवित देखा जा सका है। लोग इसे भात तथा केला खिलाकर पालते हैं, परन्तु कीड़े-मकोड़े तथा मांस भी देने पर खा लेता है।

—:०:—

सारिक वंश

पाटल सारिक

स्थानीय नाम—गुलाबी मैना (उत्तरी हि०), तिलयर (दक्षि० हिन्दी) ब्या (सिं०) लाल मैना (पश्चिमी बंगाल)

पाटल सारिक का आकार मैना के बराबर होता है। शरीर की लम्बाई ६ इञ्च, पंख की लम्बाई ५ या ५½ इञ्च, पूँछ की लम्बाई २¾ या



पाटल सारिक

३ इञ्च, चोंच की लम्बाई लगभग १ इञ्च तथा गुल्फ (मुख्य पाद) की लम्बाई १$\frac{1}{4}$ इञ्च होती है।

पाटल सारिक गुलाबी तथा काले रङ्ग का मैना समान पक्षी है। नर मादा समान होते हैं, परन्तु सन्तानोत्पादन ऋतु से भिन्न समयों में अल्पायु तथा वयस्क पक्षी अधिक धूमिल तथा अधिक भूरे होते हैं। खेतों में झुंड रूप में पाये जाते हैं।

पाटल सारिक का सन्तानोत्पादन स्थल विदेशों में हैं। उन क्षेत्रों में दक्षिणी पूर्वी योरप, पश्चिमी एशिया और तुर्किस्तान तक मध्य एशिया हैं। शीत ऋतु में प्रवास कर यह भारत में उत्तरी-पश्चिमी भागों में सर्वत्र दिखाई पड़ता है। अल्पसंख्या में इसे दक्षिण भारत में भी देखा जा सकता है। दक्षिण में सीलोन तथा पूर्व में मानभूमि (बिहार) तक इसको देखा जा सकता है। कोई-कोई भूला भटका पक्षी और भी पूर्व तक चला जाता है। आसाम में भी इसका नमूना पाया जा सका है। ऐंडमन में भी इसका दर्शन हो सका है। इसके घोंसले का स्थान मकान का कोई भी छेद या ताखा, वृक्ष का कोटर या कगारा होता है। कहीं-कहीं भूमि पर खुले स्थल में भी अंडा देते देखा गया है। घास-पात या किसी भी वस्तु से घोंसला सजाया गया होता है। तीन से लेकर पाँच अंडे तक एक साथ देता है।

पाटल सारिक विशेष झुंडों में रहता है। घोंसले भी झुंड रूप में निकट के स्थानों में बनते हैं। यह पश्चिमी पाकिस्तान में सर्वप्रथम प्रवासी पक्षियों रूप में भारी संख्या में पहुँचता है। कितने तो जुलाई के ही अन्त में पहुँच जाते हैं। अक्टूबर तक अधिकांश पक्षी दक्षिणी तथा उत्तर भारत तक पहुँच गए होते हैं। दिसम्बर, जनवरी, फरवरी तक पश्चिमी पाकिस्तान में कदाचित् ही कोई पक्षी रह जाता हो। अप्रैल मई में वापसी यात्रा प्रारम्भ होती है। मध्य मई तक सब पक्षी उत्तर पहुँच गए होते हैं। इनका भोजन दाना तथा कीड़े हैं। ज्वार के खेतों में भी

भारी क्षति पहुँचाते हैं। किसान टिन पीट पीटकर कितना भी भगाने का प्रयत्न करता है, ये डटे पड़े ही रहते हैं। एक ओर से उड़ कर फिर दूसरी ओर बैठकर "मान न मान, मैं तेरा मेहमान" की उक्ति चरितार्थ करते हैं। यदि खेत से उड़ा भी दिए गए तो समीप के वृक्षों पर थोड़ी देर तक बैठ लेने के बाद फिर खेतों की फसल पर टूट पड़ते हैं। पशुओं के चरते रहने पर उनको भी घेरते हैं। चलने-फिरने से जो कीड़े पतिंगे बाधा पाकर तनिक भी गति करते हैं उनको ये पक्षी खा जाते हैं। यदि कभी कृषि पर टिड्डियों का आक्रमण हुआ तो पाटल सारिक उन टिड्डियों को ही अपना भरपूर आहार बनाते हैं। इस कारण उनके द्वारा कृषि का एक भारी उपकार हो जाता है। सेमल के फूल का मधुपान करने का भी यह प्रेमी होता है। अतएव इसे उसके फूलों के निकट सदा बैठे पाया जा सकता है। सेमल (शाल्मली) पुष्प का मधु चखने वाले अन्य पक्षियों से यह बड़ा द्वेष रखता है।

श्येत सारिका

स्थानीय नाम—पवी (हि०), देसी पवी (बंग०), कट हालिक (आसाम)

श्येत सारिका को शरभी प्रजाति का पक्षी कहते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं, एक तो चीनी तथा दूसरी मलाबार प्रदेशीय। मलाबार प्रदेशीय जाति के कई विभेद हैं। श्येत सारिका मलाबार प्रदेशीय जाति का पक्षी है। शरभी प्रजाति की दोनों जातियाँ भारत में पाई जाती हैं। इनमें नर-मादा समान रङ्ग रूप के होते हैं। नवजात पक्षी प्रथम वर्ष के शरद ऋतु तक सर्वांग भूरे रङ्ग के होते हैं। चोंच सिर से कम लम्बी होती है। वह दुर्बल होती है। पूँछ धीरे-धीरे पतली बनी होती है। पूँछ का मध्यवर्ती पतत्र (पर) कुछ अधिक लम्बा होता है।

चीना सारिका ६ इञ्च लम्बी मैना के आकार की ही होती है। यह चीन, फारमोसा तथा जापान में उत्पन्न होती है। शीत ऋतु में प्रवास

कर सारे हिन्द चीन, श्याम (थाईलैंड) सिंगापुर, पेगू आदि तक फैल जाती है। मनीपुर में भी यह पाई गई है।

मलाबारी या श्येत सारिका का आकार भी मैना के बराबर ६ इञ्च लम्बा होता है। पङ्ख की लम्बाई ४ इञ्च, पूँछ की लम्बाई २$\frac{1}{2}$ इञ्च, चोंच की लम्बाई $\frac{3}{4}$ इञ्च तथा गुल्फ (मुख्यपाद) की लम्बाई एक इञ्च होती है।

इसके पंख के परों का रङ्ग काला-सा होता है। शरीर के ऊपरी तल का रङ्ग धूसर (खाकी), तथा निचले तल का रङ्ग जंग सा भूरा होता है।



श्येत सारिका

श्येत सारिका के प्रसार क्षेत्र की पश्चिमी सीमा आबू पर्वत से

देहरादून तक खिंची काल्पनिक रेखा है। दक्षिण भारत में मलाबार तट पर बेलगाँव के दक्षिण कदाचित् सन्तानोत्पादन नहीं करती परन्तु जाड़े में मैसूर तक फैल जाती है। आसाम, मनीपुर, चिन पर्वत, (बर्मा) तथा कोचीन चीन में भी पाई जाती है।

श्येत सारिका मैदानी भागों से लेकर ५,००० फुट ऊँचे स्थानों तक में मई जून में अंडे देती है। किन्तु ४००० फुट से ऊँचाई के स्थानों में विरले ही अंडे देती है। १० से ४० फुट ऊँची डालों पर अपने घोंसले बनाती है। पेड़ के कोटर बड़ा या परिवर्तित कर घोंसला के उपयुक्त बना लेती है। घोंसला साधारण रूप का भद्दा सा ही होता है। दो चार पत्तियाँ तथा थोड़ी घास ही सब कुछ सामग्री होती है। तीन से लेकर पाँच तक अंडे देती है। अंडों का रङ्ग धूमिल नीला होता है।

श्येत सारिका बहुसंख्यक वृक्षों युक्त खुले मैदान या जङ्गल की चिड़िया है। अकेले खड़े ऊँचे वृक्षों पर विशेष निवास पाया जाता है। जब उन वृक्षों में मंजरियाँ आती हैं तो मजरी या पुष्पों पर आकर्षित कीटों को यह अपना सुगमतया आहार बनाती है। अनेक अन्य जातियों की चिड़ियों में ही हिल-मिल कर यह भी आनन्दपूर्वक कीटों का आखेट करती है। श्येत सारिका जाति के भी एक दर्जन या कोड़ी पक्षी झुण्ड बनाए हो सकते हैं। जब तब सारा झुण्ड वृक्ष पर से सहसा उड़ भागता है मानों बाज के हमले से रक्षा का विधान ही हो। परन्तु सहसा उड़ भागने का कोई दृश्य कारण नहीं होता। वृक्ष की दो एक परिक्रमा कर लेने के पश्चात् इनका झुण्ड पुनः वृक्ष के ऊपर आ बैठता है। सागौन के बागों में या बस्तियों के पड़ोस के उपयुक्त स्थानों में ये पक्षी पाए जाते हैं। यह विशेषतया वृक्षों पर ही रहकर आहार ढूँढ़ने वाली चिड़िया है, परन्तु यह नीची झाड़ियों तथा भूमि पर भी प्रायः उतर आकर शिकार ढूँढ़ती है। सेमल (शाल्मली) के फूलों का मधु पीने के लिये यह उस वृक्ष पर पहुँचती है। इसके आहार में फल, झरबेरिया, वृक्षों के गोदे, कीट:

आदि हैं। पाटल सारिक की तरह ये भी वृक्षों पर चहकते दिखाई पड़ते हैं।

कृष्णशीर्ष सारिक

स्थानीय नाम—पोपोया मैना, बम्हनी मैना, पुहाइया (हि०)
मुंगेर पवी, ब्राह्मणी मैना (वंग०), पबिया पवी (मथुरा)

कृष्णशीर्ष या ब्राह्मणी मैना के शरीर की लम्बाई ७¾ इञ्च, पंख की लम्बाई ४ इञ्च, पूँछ की लम्बाई २¾ इञ्च, गुल्फ (मुख्यपाद) की लम्बाई १¼ इञ्च से कुछ कम तथा चोंच की लम्बाई ¾ इञ्च होती है।

इसके शरीर का ऊपरी तल धूसर, तथा निचला तल लालिमा युक्त पीला होता है। सिर तथा लम्बी शिखा का रंग चमकीला काला होता है। पंख के परों का रंग काला, पूँछ का रंग भूरा तथा छोरों पर श्वेत पट्टी युक्त होता है। भूमि पर उड़ान से उतरते समय जब यह दुम फैलाए रहती है तो उसमें श्वेत पट्टी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। अल्पायु सारिका का सिर भस्मीय भूरा तथा शिखाहीन होता है।

कृष्णशीर्ष सारिका (ब्राह्मणी) मैना का प्रसार सीलोन से लेकर हिमालय की चार या पाँच हजार फुट ऊँची पर्वतमाला तक समग्र भारत में है। अफगानिस्तान तथा गिलगिट में ८००० फुट की ऊँचाई पर भी यह पाई जा सकी है। पाकिस्तानी बङ्गाल में यह दुर्लभ है। ढाका में इसे देखा जा सका है। आसाम में गौहाटी में भी पाई गई है।

कृष्णशीर्ष सारिका सघन बनों को छोड़कर सर्वत्र पाई जाती है। मरुभूमि में नहीं पाई जाती। यह मैदानी चिड़िया है किन्तु भूले भटके बहुत ऊँचाई के स्थलों तक भी पहुँच जाती है। यह भूमि तथा वृक्ष पर आहार ढूँढ़ती है। ढोरों के साथ भी भटकते देखा जाता है। साधारण मैना के साथ यह भी भूमि पर कीड़े पतंग खाती रहती है किन्तु उच्च वृक्षों पर भी श्वेत सारिका या अन्य पक्षियों के मध्य इसे बैठा पाया जाता

है। ये चिड़ियाँ हैं। शीघ्र पालतू बन जाती है। सदा प्रसन्न रहने का स्वभाव होता है। इसकी बोली भी मीठी है। सन्तानोत्पादन ऋतु में तो इसका स्वर गायन रूप में परिवर्तित सा हो जाता है। वृक्षों पर ही रहने वाली मैना से यह कम सीधी तथा वेग का उड़ान करती है, परन्तु भूमि पर चरने वाले मैना से फिर भी अधिक चपल तथा उड़ाकू होती है।

सामान्य सारिका

स्थानीय नाम—देसी मैना (हि०), सालिक, भट सालिक (बंग०), बम्हनी, सालू (छोटा नागपुर), सालोंका (महाराष्ट्र) हालिक सारई (आसाम्), नोक सालिक (श्याम)

साधारण या देसी मैना का नाम ही सामान्य सारिका है। इसका आकार बुलबुल तथा कबूतर के मध्यवर्ती होता है। शरीर की लम्बाई ९ इञ्च, पंख की लम्बाई ६ इञ्च, पूँछ की लम्बाई ३½ इञ्च, गुल्फ (मुख्यपाद) की लम्बाई १ डेढ़ इञ्च, तथा चोंच की लम्बाई एक इञ्च से कम होती है।

इस मैना का रङ्ग गहरा भूरा होता है। चोंच, आँखों के चारों ओर के नग्न भाग तथा पैरों का रङ्ग चमकीला पीला होता है। इसकी उड़ान के समय पंखों में एक बड़ी श्वेत पट्टी प्रमुख रूप से दिखाई पड़ जाती है। नर और मादा के समान रङ्ग होते हैं। यह गाँवों तथा नगरों में बस्ती के मध्य बराबर दिखाई पड़ जाती है। इसके सारे सिर तथा गर्दन का रङ्ग चमकीला काला होता है जो धीरे-धीरे हल्का होकर पिछली गर्दन तथा अग्रवक्षस्थल तक कालापन युक्त भूरा बन गया होता है।

सामान्य सारिका का प्रसार सारे भारतवर्ष में धुर दक्षिण से लेकर उत्तर में ८००० फुट ऊँचाई की हिमालय पर्वतमालाओं तक है। पूर्व में मध्य श्याम (थाईलैंड) तक इसका व्यापक प्रसार है। बिलोचिस्तान

(पाकिस्तान) तथा अफगानिस्तान तक भी इसका प्रसार है। दक्षिणी त्रावणकोर की मैना का रङ्ग बहुत गहरा होता है। सीलोन में इसी की एक दूसरी उपजाति पाई जाती है जिसका रङ्ग सारे अङ्ग में अधिक गहरा होता है। काला सिर पीठ के गहरे भूरे रङ्ग से पृथक रङ्ग का नहीं ज्ञात



सामान्य सारिका

होता। पंख की श्वेत पट्टी छोटी होती है। यह केवल सीलोन (लंका) में ही पाई जाती है।

सामान्य सारिका मुख्यतया मई जून में सारे प्रसार क्षेत्रों में अंडे

देती है। यह जहाँ नहीं पाई जाती थी, वहाँ भी फैलती जा रही है। मार्च से अगस्त तक के मध्य भी इसको अंडा देते देखा जाता है। किन्तु अंडमन में तो साल भर इसे अंडा देते पाया जा सकता है। पेड़ के कोटरों, कगारों, तथा चट्टानों के छेद में इसका घोंसला पाया जाता है किन्तु कभी-कभी वृक्षों पर घास-पात के घोंसले भी बनाती है। पुराने घोंसले में ही घास-पात पुनः बिछाकर भी काम निकालती है। प्रायः एक ऋतु में ही दो बार अण्डे देती है। प्रति वर्ष एक स्थान पर ही घोंसला रखती है। नर और मादा दोनों ही घोंसला बनाने तथा बच्चों के पोषण में हाथ बटाते हैं।

साधारण सारिका भारत में सर्व प्रचलित चिड़िया है। पर्वतीय भागों में मनुष्य जहाँ अपना निवास बनाता जा रहा है, यह चिड़िया पहले उन स्थानों में साधारण रूप में न पाए जाने पर भी मनुष्य के साथ पहुँच कर अड्डा बनाती जा रही है। इन्हें बस्ती की चिड़िया ही कहना चाहिए। खेतों, बाग बगीचों, बस्तियों आदि में इसका निर्वाह हो जाता है। ये सुनसान जंगलों में मनुष्य से दूर नहीं बसतीं। इनको लोग पालते भी हैं। इन चिड़ियों का मुख्य आहार कीट-पतंग हैं। इस कारण खेती को इनसे लाभ ही पहुँचता है। कीटों, टिड्डियों, टिड्डों आदि को ये खा जाती हैं किन्तु पकी फसल के दाने भी खाकर कभी कृषि को भारी क्षति पहुँचाती हैं। ये भूमि पर ही अपना चारा चुगती रहती हैं। ढोरों की पीठ पर बैठ कर उनके बदन से चिपके कीट भी खाती हैं। चारा चुग लेने पर सन्ध्या काल बसेरा लेने के लिए कौओं, चितकबरी मैना आदि के साथ देशी मैना भी भारी संख्या में एकत्र हो जाती है। वृक्षों तथा बाँसों पर वह बसेरा लेती है। रात को सोते रहने पर भी जब किसी कुत्ता, गीदड़ या उल्लू की आहट मिलती है तो ये फुर से एक साथ ही उड़ कर चहचहाहट की धुन लगा देती हैं। फिर कुछ देर में स्थिति शान्त होने पर पुनः सोती हैं।

गंगा सारिका

स्था० नाम—गंगा मैना (हि०), गंग सालिक, राम सालिक (वंग), बड़ी मैना (नैपाल), लाली (सिं०), डरैता मैना (लखनऊ)

गंगा सारिका या बड़ी मैना का आकार साधारण मैना से थोड़ा छोटा होता है। शरीर की लम्बाई लगभग ६ इञ्च, पंख की लम्बाई पौने पाँच या पाँच इञ्च, पूँछ की लम्बाई तीन इञ्च, गुल्फ (मुख्यपाद) की लम्बाई डेढ़ इञ्च तथा चोंच की लम्बाई पौन इञ्च से कुछ अधिक होती है।

गंगा सारिका या बड़ी मैना साधारण सारिका सदृश ही होती है। किन्तु उसका रङ्ग धूमिल नीला मिश्रित धूसर होता है। आँख के चारों ओर नग्न चर्म पीला न होकर ईंटे के रङ्ग का लाल होता है। नर और मादा के रूप समान होते हैं। यह मैदानों में झुंड में चारा चुगती है।

एक जंगली मैना भी विरल वृक्षों के मैदानों में पाई जाती है जो भारत के अनेक भागों में प्रसारित है। वह साधारण सारिका के साथ ही पाई जाती है। आकार-प्रकार में वह साधारण सारिका (देसी मैना) सरीखी ही होती है, किन्तु उसका रङ्ग अधिक धूसर (खाकी) मिश्रित भूरा होता है। उसकी आँखों के चारों ओर नग्न (पर विहीन) त्वचा नहीं होती। उसके सिर पर एक परों की खड़ी कलँगी सी होती है।

गङ्गा सारिका का प्रसार उत्तरी भारत में मसूरी से पश्चिमी आसाम तक पाया जाता है। दक्षिण में बम्बई तक मिलती है। हिमालय में ३००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। यह स्थायी या बारहमासी चिड़िया है। परन्तु स्थानीय रूप से यथेष्ट स्थानान्तर करती है।

गंगा सारिका बाग, बस्ती की चिड़िया है। यह खेतों, बागों आदि तथा गाँव, नगर के पड़ोस में पाई जाती है। जनाकीर्ण स्थलों में खाने-पीने की वस्तुयें गिरने से उसे चुगने के लिए यह पहुँचती दिखाई पड़ती

है। पशुओं के कान से परोपजीवी कीट नोच खाने के लिए यह कान पर भी बैठ जाती है। हिलाने-डुलाने पर आसन जमाए रहती है।

गङ्गा सारिका मई से अगस्त तक अण्डे देती हैं। घोसले झुण्डों में बने मिलते हैं। एक बार में तीन से पाँच तक अण्डे देती है। घोंसले की रचना घास-पात, कूड़ा-कबाड़ आदि से होती है। कगारों में छेद बना कर कूड़ा-कबाड़ रख कर भी घोंसले का काम लेती है।

भारत शबल सारिका

स्था० नाम—अबलक मैना (हि०), अबलका गोसालिक,
गुइया लेग्गरा (बंग०)

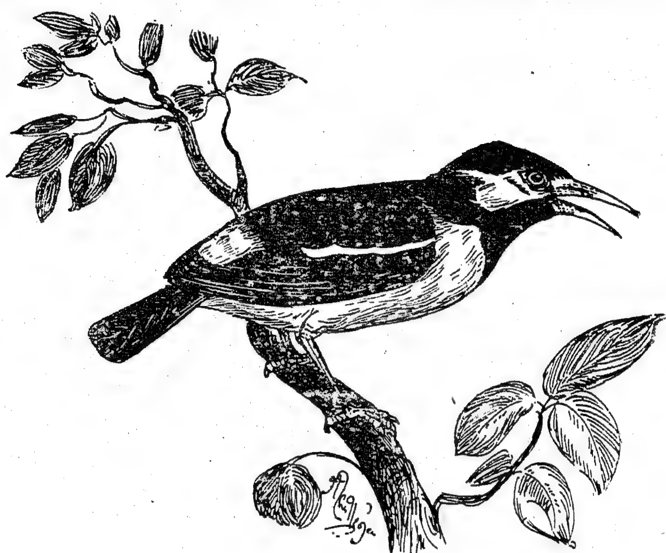
भारत शबल सारिका (चितकबरी मैना) या अबलक मैना का आकार देशी मैना से तनिक छोटा होता है। पूर्ण शरीर की लम्बाई लगभग ६ इञ्च पंख की लम्बाई साढ़े पाँच या छः इञ्च, पूँछ की लम्बाई तीन इञ्च, गुल्फ (मुख्यपाद) की लम्बाई डेढ़ इञ्च तथा चोंच की लम्बाई एक इञ्च से कुछ अधिक होती है।

शबल सारिका का रङ्ग श्वेत तथा काला रूप का चितकबरा होता है। चोंच का रङ्ग चमकीला नारंगी तथा पीला होता है। नर और मादा का रङ्ग-रूप समान ही होता है। खुले मैदानों, खेतों आदि में झुंडों में रहती है।

शबल सारिका के प्रसार क्षेत्र की पश्चिमी सीमा अम्बाला, हैदराबाद (दक्षिण) तथा मछलीपट्टम की सीध में खिची काल्पनिक रेखा माननी चाहिए। पूर्व में पूर्वी पाकिस्तान, दक्षिणी चीन की पहाड़ियाँ, तथा अकयाब तक प्रसार पाया जाता है।

यह मुख्यत: अप्रैल, मई तथा जून में अंडे देती है। इसके कुछ पूर्व या बाद तक भी अंडे देने के उदाहरण हैं। वर्ष भर में दो या तीन

चार अंडे देती हैं। टहनी, जड़, पत्ते चिथड़े आदि से गुंबजनुमा घोंसला बनाती है। इस पक्षी के आकार की दृष्टि से घोंसले बहुत बड़े होते हैं।



भारत शबल सारिका

कभी-कभी दो फीट तक लम्बे और अठारह इञ्च चौड़े घोंसले बने देखे जाते हैं। प्रवेश-द्वार ऊपरी छोर के निकट होता है। घोंसले को सँवारने का कोई उद्योग नहीं होता। चारों ओर जैसे-तैसे टेढ़े-मेढ़े रूप में टहनियाँ निकली रहती हैं। भूमि से पाँच फुट से लेकर पचास फुट तक की ऊँचाई में किसी भी ऊँचाई पर घोंसला बना हो सकता है। उसे छिपी जगह में भी बनाने का कोई ध्यान नहीं देखा जाता। अंडों का रङ्ग अन्य मैना की तरह नीला होता है। एक ही वृक्ष पर दो-तीन घोंसले पाए जा सकते हैं। यह झुंड रूप में ही घोंसले बनाकर उपनिवेश सा बनाती जान पड़ती है।

चंचुसूची वंश

बया

स्था० नाम—बया (हि०), चिनडोरा (बिहार), बबी, तालबबी (वंग)

बया या वाय का आकार गौरैया के बराबर होता है। पूर्ण शरीर की लम्बाई छः इञ्च, पङ्ख की लम्बाई ढाई या तीन इञ्च, पूँछ की लम्बाई दो इञ्च, गुल्फ (मुख्यपाद) की लंबाई पौन इञ्च, तथा चोंच की लंबाई पौन इञ्च से तनिक न्यून होती है।

बया के नर मादा सन्तानोत्पादन ऋतु के अतिरिक्त समय में मादा घरेलू गौरैया (भारत गृह कुलिंग) के रङ्ग रूप के होते हैं किन्तु उनकी चोंच अधिक स्थूल होती है तथा दुम कुछ छोटी होती है। खुले मैदान के खेतों में इसके झुंड पाए जाते हैं।

बया का प्रसार क्षेत्र समस्त भारत का मैदानी भाग है। हिमालय में भी ३००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

ज्यों ही वर्षा का आगमन होता है तथा धरती पर हरियाली का नया प्रसार हो जाता है, बया अपने घोंसले के लिए उपयुक्त सामग्री प्रस्तुत समझ कर घोंसले का निर्माण करता है। जहाँ सदा ही वर्षा हुआ करती है और हरियाली उगती रहती है, वहाँ बया मार्च और अप्रैल में ही अंडे देता है किन्तु अधिकांश क्षेत्रों में अंडा देने का समय जुलाई और अगस्त महीने हैं। बया दो दर्जन या दो सौ तक भी एक स्थान पर उपनिवेश रूप में अपने सुन्दर लटकते घोंसलों का निर्माण करता है। ये घोंसले बाँस की किसी कुञ्ज या ताड़ के झुंड या अन्य उपयुक्त वृक्षों से लटके रहते हैं।

बया खुले कृषि क्षेत्रों का पक्षी है। यह यथेष्ट संख्या के झुन्डों में घूमकर भूमि पर पड़े धान, ज्वार या अन्य अन्नों के दाने चुगता है। फसल के पकने पर भी उसको क्षति पहुँचाकर दाने खा जाता है। धान की तैयार फसल से आकर्षित होकर ये ऋतु के अनुकूल निवास स्थानान्तर करते हैं। तालाबों या दलदली भागों के तट पर उगे नरकुलों, या अन्य पौधों पर बसेरा ले लेते हैं। ये गौरैया की भाँति चिट चिट का कलरव करते रहते हैं। सन्तानोत्पादन ऋतु में इनकी ध्वनि ची ई ई की तरह लंबी तथा आनन्दमय होती है।

ब्राह्म रेखित सुगृह

स्था० नाम—तेलिया बया (बंग०), बबई (रंगपुर)

ब्रह्म रेखित सुगृह या तेलिया बया गौरैया के बराबर होता है। रेखित सुगृह या बया का रंग साधारण बया से कुछ भिन्न होता है। इसका वक्षस्थल नर और मादा दोनों में ही पिंगल वर्ण (धूमिल पीला) तथा काले रंग की रेखाओं युक्त होता है। सन्तानोत्पादन ऋतु तथा उससे विभिन्न समय में भी ऐसा रंग होता है।

रेखित सुगृह (बया) का प्रसार क्षेत्र हिमालय की तराई गढ़वाल से पूर्वी आसाम तक है। मैदानी भाग में यह उपयुक्त आर्द्र प्रदेश में पाया जाता है। यह पूर्ण बंगाल (पाकिस्तान का पूर्वी बंगाल युक्त) उत्तरी उड़ीसा, बर्मा, शान प्रदेश, श्याम (थाईलैंड) तथा अन्नाम तक पाया जाता है।

यह पक्षी उत्तरी भारत में मई से जुलाई तक अंडे देता है। श्याम तथा दक्षिणी बर्मा में मई से सितम्बर तक अंडे देता पाया जाता है। यह तीन से पाँच अंडे तक देता है।

रेखित बया की एक उपजाति मद्रासी होती है। वह सीलोन में भी पाई जाती है। लोग रेखित बया की दोनों उपजातियाँ पालते हैं किन्तु

मद्रासी उपजाति को अधिक पाला जाता है। वह अद्भुत खेल कर दिखाता है। उसे ब्राह्मणी बया भी कहा जाता है। ब्राह्मणी बया की अपेक्षा तेलिया



ब्राह्म रेखित सुगृह

बया गहरे तथा अधिक प्रचुर रंगों का होता है। तेलिया बया के परों के किनारे लाल मिश्रित भूरे होते हैं। अतएव उसका ऊपरी तल अधिक रक्त बभ्रु (लाल मिश्रित भूरा) दिखाई पड़ता है। उसका निम्नतल भी अधिक पीला होता है तथा रेखाएँ भी अधिक होती हैं। ब्राह्मणी बया की करामात का वर्णन विलक्षण है। कुएँ में अँगूठी गिरा दीजिए, वह अँगूठी

के पानी तक पहुँचने के पूर्व ही पकड़ कर ला देगा, मनियों को माला रूप में गूंथ देगा, पेड़ की पत्ती ला देगा, ठीक संख्या निकाल लायगा। ये काम सिखाने पर कर सकने में वह समर्थ होता है जिससे उसकी कुशलता सिद्ध होती है।

श्वेतपृष्ठ मुनिया (सितपृष्ठ पुत्री)

स्था० नाम—शकरी मुनिया (बग)

सितपृष्ठ पुत्री या शकरी मुनिया का आकार गौरैया से कुछ छोटा होता है। पूर्ण शरीर की लम्बाई साढ़े पाँच इञ्च, पङ्ख की लम्बाई दो इञ्च, दुम की लम्बाई डेढ़ इञ्च, गुल्फ (मुखरपाद) की लम्बाई दो-तिहाई इञ्च तथा चोंच की लम्बाई आधा इञ्च कुछ कम होती है।

श्वेतपृष्ठ मुनिया के मुख, भाल, अग्रशीर्ष, हनु, कण्ठ तथा वक्षस्थल का रंग मखमली काला होता है। शरीर के ऊपरी तल का रंग कत्थई होता है। पूँछ का रङ्ग कालापन युक्त कत्थई होता है। कटि प्रदेश पर एक बड़ी श्वेत पट्टी होती है। वक्षस्थल से नीचे निर्मल श्वेत रङ्ग होता है। पैर तथा पंजे का रङ्ग हरापन सा होता है। चोंच शङ्कुवत् होती है। पूँछ धीरे-धीरे पतली बनकर सिर पर नोकीली बनी होती है। नर और मादा एक रूप रङ्ग के होते हैं।

श्वेतपृष्ठ मुनिया का प्रसार क्षेत्र अधिकांश दक्षिण भारत, गढ़वाल से पूर्ववर्ती हिमालय पर्वतमाला की एक पट्टी, आसाम, अंडमन, निकोबर आदि है।

यह छोटे-छोटे झुंडों में घास के बीज खाने निकलती है। भूमि पर खेतों में उन बीजों को खाती फिरती है। मन्द-मन्द कलरव भी करती है।

इस पक्षी का घोंसला फूलवाले पौधों से बना गोलाकार बना होता है। उसमें बगल से आने का मार्ग होता है। कभी-कभी वह छोटी नली सा

बना होता है। यह छोटी झाड़ियों या वृक्षों में भूमि ५ से १० फुट की ऊँचाई तक बना होता है। यह पाँच या छः अंडे देती है। अंडों का रङ्ग बिल्कुल श्वेत होता है। १३, १४ दिन में अण्डे से बच्चे उत्पन्न होते हैं। अण्डे देने का कोई निश्चित समय नहीं है। भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न मास अंडे देने के होते हैं।

श्वेतकंठ मुनिया (श्वेतकंठ पुत्री)

स्था० नाम—चराचरा (उत्तर प्रदेश), पीदर (दक्षिणी
तथा मध्य भारत) सर, मुनिया (बङ्ग०)

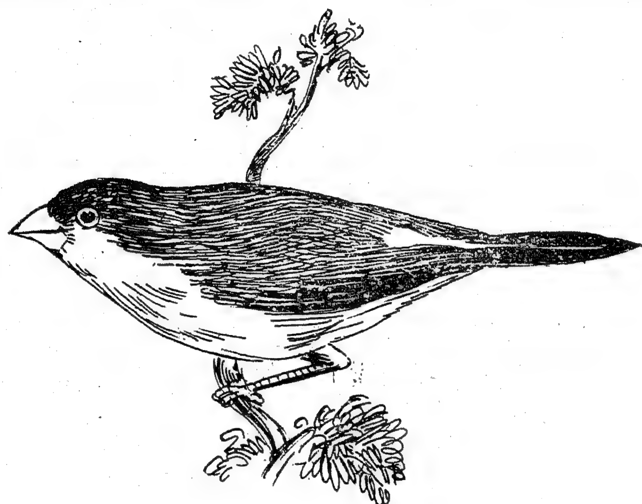
श्वेतकण्ठ पुत्री या चरचरा का आकार श्वेत पृष्ठ मुनिया (शकरी मुनिया) के बराबर ही होता है। दुप की लम्बाई कुछ अधिक होती है। उसे दो इञ्च तक लम्बा पाया जाता है।

श्वेतकण्ठ मुनिया मटमैले भूरे रङ्ग की चिड़िया है। शीर्ष के पतत्र (पर) गहरे केन्द्रयुक्त होते हैं। अधोकटि प्रदेश तथा ऊपरी पुच्छ आच्छादक पतत्र श्वेत रङ्ग के होते हैं। इसकी चोंच स्थूल होती है। पूँछ काली तथा नोकीली होती है। शरीर का अधोभाग उजला सा होता है।

श्वेतकण्ठ मुनिया भारत भर में पाई जाती है। हिमालय में आसाम को छोड़कर शेष भाग में ६००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। पश्चिम में बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान तक इसका फैलाव है। ईरान में मस्कत तक भी पाई गई है। सिंध, बिलोचिस्तान तथा अफगानिस्तान में पाई जाने वाली श्वेतकण्ठ मुनिया कुछ धूमिल रङ्ग की होती है।

इस पक्षी का निवास-स्थल सूखे खुले मैदान, खेत तथा झाड़-झंखाड़ वाले मैदान हैं। नम स्थानों से दूर रहना चाहती है। यह झुंड रूप में घासों के बीज चुगती भूमि पाई जा सकती है। उनकी बालियों से दाने नोचकर उड़ जाती भी दिखाई पड़ती है। इसकी मन्द-मन्द चहचहाहट

अन्य मुनिया चिड़ियों की तरह ही होती है। यह साल भर अण्डे देती है, परन्तु उच्चतम पर्वतों में अण्डे देने का समय जून या जुलाई से सितम्बर तक है। घासपात, तिनकों आदि को जुटाकर भद्दे रूप इसका घोंसला बना होता है किन्तु वह यथेष्ट भारी होता है। उसकी दीवाल



श्वेतकंठ मुनिया

मोटी होती है। तला भी भारी होता है। सूखी टहनियों, पत्तियों आदि को जुटा कर उसकी रचना हुई होती है। यह बागबगीचों फुलवाड़ियों, घरों, झाड़ियों वाले जङ्गल या लम्बी घास में अण्डे देती है। एक स्थान पर ही अनेक घोंसलों का झुंड भी दिखाई पड़ सकता है। यह चार से आठ तक अण्डे देती है। परन्तु कभी-कभी दो मादा एक ही घोंसले में अण्डा दे देती हैं। यह ३००० या कुछ इससे भी ऊपर तक के ऊँचे स्थलों तक स्थायी निवासी है। परन्तु अत्यधिक ऊँचाई के पर्वतों से स्थानीय प्रवास करती है।

श्वेत कण्ठ मुनिया अपना घोंसला कपास उत्पन्न करनेवाले प्रदेशों में पौधों से कपास नोच-नोच लाकर उससे ही बनाती है। यह कभी बया का पुराना घोंसला भी अण्डा देने के लिए उपयोग में लाती है। जब बच्चे उड़ने योग्य होकर स्वयं उड़ने लग जाते हैं, तब भी सारे परिवार का डेरा घोंसले में ही पड़ा रहता है। वह रहने के घर की भाँति प्रयुक्त होता रहता है।

भारतीय बिन्दुकित मुनिया (पृषत् पुत्री)

स्था० नाम—तेलिया मुनिया (उत्तरी हिन्दी), सिंगबाज, सिनबाज (मसूरी) सब्ज मुनिया (बङ्ग)

बिन्दुकित मुनिया या पृषत पुत्री का आकार श्वेतपृष्ठ या श्वेतकण्ठ मुनिया के बराबर ही होता है। सन्तानोत्पादन ऋतु में ऊपरी तल का रङ्ग कत्थई भूरा तथा निचले तल का रङ्ग श्वेत रङ्ग पर काले रङ्ग के धब्बों युक्त होता है। अन्य ऋतुओं तथा शिशुकाल में लगभग सादा भूरा रङ्ग होता है। नर और मादा का रङ्ग रूप एक समान होता है। यह झुन्डों में खुले खेतों में पाई जाती है।

बिन्दुकित मुनिया का प्रसार क्षेत्र राजपूताना के सूखे भाग को छोड़ कर शेष समस्त भारत में है। पूर्व में पूर्वी बङ्गाल (पाकिस्तान) तथा उत्तरी-पश्चिमी आसाम तक पाई जाती है। पीगू में भी इस तरह की चिड़िया पाई जाती है, परन्तु उसका निम्नतल कम काला होता है। अग्र पुच्छ आच्छादक परों का रङ्ग चमकीले पीले की जगह जैतूनी (हल्के हरा युक्त) पीला होता है।

बिन्दुकित मुनिया भारतवर्ष भर में बाग-बगीचों युक्त भूमि में उन स्थानों में पाई जाती है जहाँ यथेष्ट तथा नियमित वर्षा होती है। यह पाँच या छः हजार फीट की ऊँचाई तक रहती है, जहाँ इसका निवास होता है, दलोंरूप में अण्डे देती है। एक बरामदे में आठ बिन्दुकित

मुनिया के घोंसले बने पाए जा सके हैं। एक वृक्ष में ही चालिस मुनिया के घोंसले देखे गए हैं। उनमें कितने तो एक दूसरे से सम्बद्ध से बने थे। यह साल भर अण्डे देती है किन्तु अधिकांश रूप में वर्षा ऋतु समाप्त होने पर अण्डे देती है।

बिन्दुकित मुनिया को फुलवाड़ियों, बगीचों आदि में बिहार करते देखा जाता है। गाँवों तथा घर के अहातों में भी रहती है। मैदानी भागों में तो इसको स्थायी या बारहमासी पाया जाता है, परन्तु ऊँचाई के स्थलों से ऋतु के अनुकूल या स्थानीय प्रवास करती है। इसको २०० तक के झुंड में भूमि पर घास के बीज चारा चुगते पाया जाता है। तनिक भी आहट पाकर सारी मण्डली हहास के शब्द के साथ फुर से उड़ जाती है तथा झाड़ियों और पेड़ों पर बैठकर चह-चह करने लगती हैं। इसका घोंसला घास का गोला सा होता है। ऊपरी सिर के पास द्वार होता है।

भारतीय लाल मुनिया (भारत रक्त पुत्री)

स्था० नाम—लाल मुनिया

लाल मुनिया का आकार विन्दुकित मुनिया से थोड़ा छोटा होता है। इसके नर का रङ्ग सन्तानोत्पादन ऋतु के अतिरिक्त मादा के समान भूरा सा होता है जिस पर जहाँ-तहाँ श्वेत धब्बे होते हैं, चोंच का रंग लाल तथा कटि प्रदेश का गहरा लाल होता है। दुम गोल होती है। इसके झुण्ड घास-पात के मैदान, सरपत के कुंज आदि में प्रायः आर्द्र स्थल में होते हैं।

इसका प्रसार हिमालय तथा सारे भारतवर्ष भर में है। पूर्व में भारत के बाहर ऊपर चिन्दविन पहाड़ी, कोचीन, श्याम (थाईलैंड) सिंगापुर और जावा आदि तक पाया जाता है। दक्षिणी पूर्वी एशिया की मूल

निवासिनी चिड़िया यह कदाचित नहीं है। वहाँ ले जाकर प्रचारित की गई जान पड़ती है।

सूखे तथा बंजर स्थलों को छोड़कर सारे भारत में लाल मुनिया अंडे देती है। अंडे वर्ष के किसी भी मास में पाये जा सकते हैं किन्तु अधिकांश



भारत लालमुनिया

चिड़ियाँ वर्षा ऋतु के प्रारंभ में अंडे देती हैं। इन्हें जून से अक्टूबर तक अंडे देते देखा जाता है। आसाम, बंगाल आदि के आर्द्र स्थलों में मार्च से मई तक अंडे देती पायी जाती है। अन्य मुनिया के घोंसलों के नमूने के छोटे घोंसले यह मुनिया बनाती है पतली घास से घोंसला बनता है जो अन्य मुनिया के घोंसलों से सुन्दर होता है। लाल मुनिया झुण्डों में अंडे नहीं देती किन्तु दो-तीन लाल मुनिया के घोंसले साथ

पाये जाते हैं। कभी-कभी तो दो-तीन चिड़ियाँ संयुक्त रूप में एक ही घोंसले में रहती पायी जाती हैं। पाँच या छः अंडे एक साथ देती है।

लाल मुनिया प्रचुर वर्षा के स्थलों में दक्षिण भारत में ६००० फुट ऊँची पहाड़ियों में, उत्तर हिमालय में ३००० फुट ऊँची जगहों में तथा ब्रह्मपुत्र के दक्षिण तथा चिन की पहाड़ियों में ४००० फुट की ऊँचाई तक पायी जाती है। यह गाँवों, बागों तथा खेतों में रहती है। परन्तु घास के जंगलों तथा विरल झुरमुटों के बन में भी बहुसंख्यक रहती है। यह बड़े प्रेम से पाली भी जाती है। इसको पालने पर केला, रोटी, सत्तू, दूध या अन्य खाद्य पदार्थ दिये जाते हैं। यह बहुत मन्द गायन करती है।

—:०:—

चटक वंश

लाल तूती (भारत पाटल चटक)

स्था० नाम—तूती, लाल तूती (हि०), अमोंगा तूती (नेपाल), छोटा तूती (सिलहट)

पाटल चटक या लाल तूती का आकार साधारण गौरैया (गृह कुलिंग) से कुछ बड़ा होता है। पंख की लंबाई साढ़े तीन इंच होती है।

नर का रङ्ग गुलाबी तथा मादा का भूरापन-सा होता है। इनकी चोंच बड़ी मोटी होती है। पूँछ में हल्की फाँक होती है। इन लक्षणों से इनकी पहचान सहज है।

पाटल चटक (लाल तूती) का सन्तानोत्पादन क्षेत्र हिमालय में १०००० फुट ऊँचाई तक, कमायूँ गढ़वाल और नेपाल से लेकर पूर्वी तिब्बत तक तथा उससे आगे यन्नान, शान राज्य और पश्चिमी तथा मध्य चीन की पर्वतमालाओं तक है। यह शरद ऋतु में सारे भारतवर्ष में फैल जाती है। लदाख तथा दक्षिणी पश्चिमी काश्मीर में उत्पन्न पाटल चटक (लाल तूती) भी कदाचित् इसी जाति की है। पूर्वी योरप की पाटल चटक उप जाति भी शरद ऋतु में प्रवास कर उत्तरी पश्चिमी तथा मध्य भारत में आती है। काकेशश की उपजाति उत्तर-पश्चिमी भाग में ही आती है। इन उपजातियों के रंगों में ही विभेद होता है। चीनी जाति हिन्द चीन तथा दक्षिण चीन तक जाती है और भारत के मैदानी भागों में पाटल चटक को शीत ऋतु में फैला पाया जाता है। दक्षिणी में त्रावणकोर तक पायी जाती है। सितम्बर से मई तक इसे छोटे-छोटे झुण्डों में बाग बगीचों या खेतों के पास झाड़ियों में कीड़े-मकोड़े या खेतों की फसल

खाते देखा जाता है। इसका मुख्य आहार पुष्पों की कलियाँ, झरबेरियाँ, बरगद पीपल आदि के गोंदे (फल), बाँस के बीज, ज्वार, अलसी या अन्य दाने हैं। अनेक वन्य पुष्पों का मधु भी चूसती है। इस कारण यह पुष्पों के परागण (पुंकेसर को रजोकण तक पहुँचाने) में सहायता करती है।

हिमालय में जून से अगस्त तक घोंसला बनाती है। घास की प्याली बनाकर पतली जड़ों तथा बाल का अस्तर देती है। भूमि से २ फुट से लेकर ६ फुट तक ऊँचाई पर जंगली गुलाबों या इसी प्रकार की अन्य झाड़ियों में ये घोंसले बनते हैं। ३ या ४ अंडे एक बार देती है अण्डों का रंग नीला होता है जिस पर काले तथा हल्के लाल रंग के धब्बे होते हैं।

नक्कार खाने में तूती की आवाज का महावरा प्रसिद्ध है। परन्तु यथार्थ में तूती के मन्द गायन को विरले ही लोगों ने सुनकर उसे तूती का मन्दस्वर ही होने का ज्ञान प्राप्त किया होगा। यह टूई टूई सा करती मन्द स्वर का गायन करती है किन्तु सन्तानोत्पादन करने जाने पर इसे उच्च मधुर गायन उत्पन्न करते जाते देखा जाता है।

पीतकंठ गौरैया (पीतगल कुलिंग)

स्था० नाम—राजी, जंगली चुरी (हि०)

पीतगल कुलिंग या पीला कंठ गौरैया का आकार साधारण गौरैया (गृह कुलिंग) के बराबर होता है। पूर्ण शरीर की लम्बाई छः इंच, पंख की लंबाई सवा तीन इंच, पूछ की लम्बाई दो इंच, गुल्फ (मुख्य पाद) की लंबाई पौन इंच से कुछ कम तथा चोंच की लम्बाई आधा इञ्च होती है।

इस पक्षी के ऊपरी तल का रंग बादामी, कटिप्रदेश तथा पूँछ के आच्छादक का कुछ धूमिल रंग, किन्तु पङ्खों तथा पूँछ का गहरा रंग होता है, पंखों में दो श्वेत पट्टियाँ होती हैं। पूँछ में हल्की फाँक होती है। नर के गले पर चमकीला पीला धब्बा होता है। उधर का मध्य भाग

उजला-सा होता है। पूँछ का निम्नतलीय आच्छादक पतत्र पूर्ण श्वेत होता है। आँख के कोये गहरे भूरे होते हैं। नर में सन्तानोत्पादन ऋतु में चोंच पूर्ण काली होती है। अन्य समयों में ऊपरी चंचु भूरा होता है। मादा का ऊपरी चंचु प्रत्येक समय भूरा तथा अधो चंचु धूमिल पीला या नीले काले रंग युक्त श्वेत होता है। पैरों तथा पंजे का रंग धूसरपन या हरायुक्त हल्का काला होता है।

यह पक्षी सारे भारत में पाया जाता है। हिमालय में ४००० फुट की ऊँचाई तक रहता है। बंगाल में यह दुर्लभ नहीं है किन्तु राजमहल के पूर्व प्रायः नहीं पाया जाता है। आसाम में भी यह नहीं पाया जाता।

यह कुलिंग बस्तियों के निकट पाया तो अवश्य जाता है, परन्तु पीतगल कुलिंग तथा गृह कुलिंग में रंग रूप के छोटे-मोटे भेद के अतिरिक्त स्पष्ट भेद यह भी है कि गृह कुलिंग (घरेलू या साधारण गौरैया) घरों में घोंसले बनाता है। परन्तु पीतगल कुलिंग इतना धृष्ठ स्वभाव नहीं रखता। यह खुले स्थानों में कुंजों झुरमुटों आदि में ही अड्डा जमाता है। धान के खेतों में तीस पक्षी तक झुण्ड बना कर दाना चुगते पाये जा सकते हैं। यह कीड़े-मकोड़े, झरबेरियाँ, तथा पुष्प मधु को भी आहार बनाता है। नगरों में सार्वजनिक स्थलों में गड़ी लालटेनों पर टूट पड़ने वाले पतिंगों को यह आहार बनाता है। इसका कलरव गृह कुलिंग सा ही, किन्तु उससे मधुर होता है। दिन को अधिक गर्मी में इन पक्षियों का झुण्ड कहीं घने वृक्ष के ऊपर चह-चहाता विश्राम करता रहता है।

पीलगल कुलिंग समस्त प्रसार क्षेत्र में प्रायः अप्रैल में अंडे देता है। किन्तु मई, जून तक भी अंडे देने के उदाहरण पाए जाते हैं। इसका घोंसला, घासपात, चिथड़े, ऊन, पर आदि एकत्र कर बने होते हैं। वृक्ष के किसी कोटर में उन वस्तुओं को रख परों का अस्तर देकर नर्म तल का घोंसला बना लेता है। वृक्षों पर ८ से २५ फुट तक की ऊँचाई पर घोंसले बने होते हैं। कठफोड़वा (काष्ठ कुट) तथा बसंता या

कठखोरा (पिप्पल) पत्ती के बनाए काष्ठ छिद्रों को भी घोंसले रूप में परिवर्तित कर पीतगल कुलिंग प्रयुक्त करता देखा जाता है। एक बार में तीन या चार अंडे देता है। अंडों का रङ्ग श्वेत, हरामय श्वेत या पीला मिश्रित श्वेत होता है जिस पर धूमिल भूरे, खाकी भूरे रङ्गों के धब्बे सब ओर पड़े होते हैं। नर और मादा दोनों ही घोंसला बनाने तथा बच्चे के पालन में हाथ बटाते हैं।

घरेलू गौरैया (भारत गृह कुलिंग)

स्था० नाम—गौरैया (उत्तरी हिन्दी), चुरी, खस चुरी (दक्षिणी हिन्दी)

घरेलू गौरैया या भारत गृह कुलिंग सर्वविदित पत्ती है। इसका आकार बुलबुल से छोटा होता है। पूर्ण शरीर की लम्बाई छः इंच से तनिक अधिक, पंख की लंबाई तीन इंच, पूँछ की लंबाई दो इंच, गुल्फ (मुखग्रपाद) की लम्बाई पौन इञ्च तथा चोंच की लम्बाई आधा इञ्च होती है।

मादा का रंग ऊपर बादामी (हल्का भूरा) तथा काले और हल्के पीले रंग की रेखाओं युक्त होता है। निम्नतल उजला-सा होता है।

नर में नेत्र के अग्र भाग, चोंच के निकट के पतत्र (पर) तथा आँख के चारों ओर के परों का रंग काला होता है। भाल, शीर्ष तथा पश्च शीर्ष का रंग भस्मीय धूसर (स्लेटी खाकी) होता है। आँख के पीछे से एक कत्थई रंग की पट्टी गर्दन के पार्श्व से होकर कान के आच्छादक परों तक होती है जिस पर भस्मीय रंग की खाकी कोर होती है। हनु, कण्ठ, तथा मध्य वत्तस्थल काला होता है। कपोल, कर्ण आच्छादक पर तथा गर्दन का पार्श्व भाग श्वेत होता है। शेष अधोतल श्वेत होता है जिस पर पीले स्लेटी रंग के छींटे होते हैं। ऊपरी तल में काले पीले बादामी खाकी, भूरे, आदि रंग के विभिन्न मिश्रित तथा पट्टित रूप से होते हैं।

भारत तथा पाकिस्तान में निम्न प्रदेश इस पक्षी के प्रसार क्षेत्र कहे जा सकते हैं :—काठियावाड़, कच्छ, सिंध, बिलोचिस्तान, पंजाब (पूर्वी तथा पश्चिमी) सीमान्त प्रदेश, काश्मीर का गिलगिट तक स्थान, राजपूताना, उत्तर प्रदेश, बिहार, छोटा नागपुर तक उत्तरी मध्य भारतीय क्षेत्र है। हिमालय में ७००० फुट की ऊँचाई तक यह पाया जाता है। भारत के बाहर पश्चिमी ईरान, मेसोपोटामिया, दक्षिणी अरब से लेकर कैस्पियन तक यह पाया जाता है।

घरेलू गौरैया के हमारे घरों में ही घोंसला बनाने का वर्णन निरर्थक है। यह चिड़िया मनुष्य का प्रेमी या अनुगामी है। बस्तियों या पहाड़ों में भी मनुष्य के निवास का अनुगमन करती है। यह सदा चीर-चीर-चीर का शब्द करती तथा धीरे-धीरे पूँछ हिलाती रहती है। यह वर्ष में कई बार अंडे देती है। कीड़े, छोटे दाने, कली आदि इसका आहार है। वृक्षों पर पर भी शीत ऋतु में बहुसंख्यक पक्षी बसेरा लेते पाये जाते हैं।

क्षुद्र भारीट

स्था० नाम— दाव मिज्जी (कच्चरी)

भारीट पक्षी एक बहुसंख्यक पक्षियों के वर्ग हैं जो चिरिटीका नाम का एक पृथक अनुवंश बनाते हैं। चटक तथा मुखर चटक नाम के अनुवंशों में पाटल चटक, कुलिंग आदि पक्षी होते हैं। वे भारीट पक्षियों के अनुवंश को मिलाकर एक भारी वंश बनाते हैं, जो चटक वंश कहलाता है। अतएव भारीट भी पाटल चटक तथा कुलिंग के निकट गोत्रीय से हैं। भारीट पक्षी भूतल के यथेष्ट विस्तृत क्षेत्र में फैले पाए जाते हैं। उनकी सोलह प्रजातियाँ भारत में पाई जाती हैं। अधिकांश भारीट प्रवासी पक्षी ही होते हैं। थोड़े से भारीट स्थानीय प्रवासी ही होते हैं। वे हिमालय में सन्तानोत्पादन कर शीत ऋतु में मैदानी भागों में प्रवास करते हैं। उनसे भी न्यून संख्या के भारीट बारहमासी होते हैं।

भारीटों की शंकुवत् तथा अधिक नोकीली चोंच होती है। दोनों चंचुओं के भीतरी तल पूरी लम्बाई में एक दूसरे से पूर्ण चिपके नहीं होते हैं। बीच में कुछ भाग में वक्रता होती है जिससे दोनों चंचुओं के बीच अन्तराल रहता है। ऊपरी चंचु में तालु में एक छोटा कठोर अर्बुद या उभाड़ होता है। चटक पक्षियों से उनमें यही विशेषता होती है।

क्षुद्र भारीट साधारण गौरैया के आकार का पक्षी है। पूर्ण शरीर की लम्बाई छः इञ्च, पङ्ख की लम्बाई तीन इञ्च, पूँछ की लम्बाई सवा दो इञ्च,



क्षुद्र भारीट

गुल्फ (मुख्यपाद) की लम्बाई पौन इञ्च तथा चोंच की लम्बाई एक सेंटीमीटर या $\frac{2}{5}$ इञ्च होती है।

शीर्ष का मध्यवर्ती भाग भाल से पश्चशीर्ष तक प्रचुर पीला होता है। शीर्ष के पार्श्व भाग काले होते हैं। लाल मिश्रित भूरी बरौनी सरीखी मांसल पट्टी नेत्र के चारों ओर रहती है। शरीर का ऊपरी तल काला होता है जिसमें काले के बाद पीली तथा लाल मिश्रित भूरे रङ्ग की चौड़ी पट्टियों की गोट सी होती है। पूँछ का ऊपरी तल तथा ऊपरी पुच्छ-आच्छादक परों का रङ्ग गहरा भूरा होता है जिसमें धूमिल पीली भूरी किनारी होती है। नेत्र के आगे का स्थल, कपोल, हनु, कण्ठ के पार्श्व लाल मिश्रित भूरे होते हैं। निम्नतल श्वेत होता है जिस पर सामने की गर्दन, वक्षस्थल तथा पार्श्व में प्रमुख काली रेखाएँ होती हैं। आँख भूरी, चोंच का ऊपरी भाग गहरा तथा निचला भाग हल्का मटमैला भूरा होता है। पैरों तथा पञ्जों का रङ्ग लाल या पीलापन मिश्रित भूरा होता है। शीत ऋतु में नर तथा प्रत्येक ऋतु में मादा के सिर का प्रचुर लाल मिश्रित भूरा रङ्ग धूमिल होता है तथा पीली किनारियों से दबा रहता है। हनु तथा कण्ठ के पार्श्वों का रङ्ग श्वेत होता है।

क्षुद्र भारीट का प्रसार क्षेत्र उत्तर पूर्व योरप से लेकर मंचूरिया तथा मंगोलिया तक है। शीत ऋतु में यह दक्षिण में प्रवास कर उत्तर पूर्व भारत, बङ्गाल, बिहार, आसाम (पूर्वी पाकिस्तान) मनीपुर बर्मा तथा दक्षिण चीन तक फैल जाता है। यह ऐंडमन में भी जाता है।

क्षुद्र भारीट की सन्तानोत्पादन क्रिया जून और जुलाई में उत्तरी रूस से लेकर साइबेरिया में आमूर नदी के पूर्व तक सम्पादित होती है। यह घासों से छोटी प्याली सा घोंसला बनाता है जिसमें कोमल घास के कोंपलों या बाल आदि का अस्तर देता है। घोंसला भूमि पर ही बना होता है जो झाड़ी, घास आदि से छिपा रहता है। चार से लेकर छः अंडे तक देता है। उनके रङ्ग विभिन्न होते हैं। उनका पृष्ठतलीय रङ्ग धूमिल खाकी, धूमिल मटमैला गुलाबी, धूसर मिश्रित गुलाबी, पीलापन सा या हरापन-सा होता है। उस पृष्ठभूमि पर लाल भूरे आदि रङ्ग के

धब्बे छींटे आदि होते हैं। अन्य अंडों पर धब्बों के साथ रेखाएँ भी हो सकती हैं।

क्षुद्र भारीट शीत ऋतु में सारे हिमालय प्रदेश में प्रवास करता है। भारत में मैदानी भागों में बहुत ही कम देखा जाता है। किन्तु पूर्वी पाकिस्तान तथा आसाम में यह प्रायः पाया जाता है। उन स्थलों के पहाड़ों तथा उनकी तराई में इसकी उपस्थिति साधारण बात है। सन्तानोत्पादन स्थलों में यह चीड़, भोजपत्र आदि के वृक्षों पर निवास करता है। आर्द्र स्थानों को अधिक पसन्द करता है। यह ऊँचे वृक्षों पर अधिक समय व्यतीत करता है। ग्रीष्म में तो इसका आहार कीट पतङ्ग है परन्तु जाड़े में प्रवास के समय यह शाकाहारी सा बना रहता है। झरबेरियाँ तथा अनाज के दाने खाकर रहता है। यह गायक का यश भी प्राप्त करता जान पड़ता है।

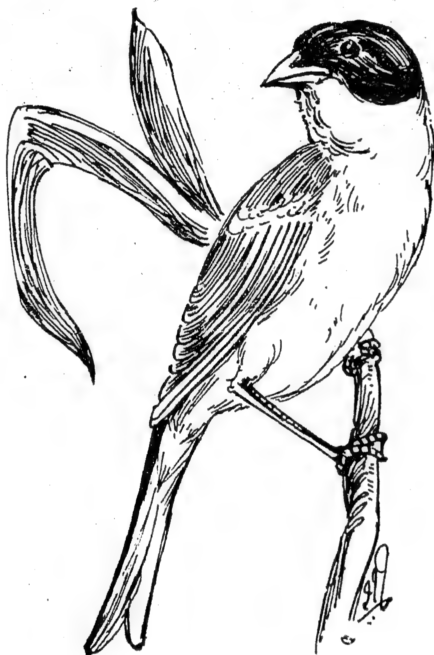
कालशीर्ष भारीट

स्था० नाम—गंदम (हि०)

आकार—पूर्ण शरीर की लम्बाई पौने सात इञ्च, पङ्ख की लम्बाई—पौने चार या चार इञ्च, पूँछ—पौने तीन इञ्च, गुल्फ (मुख्यपाद)—एक इञ्च, चोंच—लगभग आधा इञ्च। इस पक्षी का गौरैया से कुछ बड़ा आकार होता है।

कालशीर्ष भारीट तथा रक्तशीर्ष भारीट में रङ्गों का थोड़ा भेद होता है। ये दोनों पीले रङ्ग की गौरैया समान होते हैं। इनकी पूँछ कुछ लम्बी होती है तथा उसमें सिरे पर स्पष्ट दो फाँके बने होते हैं। कालशीर्ष की मादा धूमिल पीली भूरी होती है तथा रक्तशीर्ष की मादा स्लेटी भूरी (भस्मीय बभ्रु) होती है। इन दोनों का अधोतल धूमिल पीले रङ्ग का होता है। इन दोनों जातियों के पक्षी बड़े झुंडों में हिले-

मिले होते हैं। एक अन्य भारीट समान आकार का ही होता है। परन्तु उसके सिर पर कलंगी होती है। उसे चूड़ा भारीट कहा जाता है। वह



कालशीर्ष भारीट

झुंड में नहीं रहता। निम्न हिमालय, मध्य तथा दक्षिण भारत में चूड़ा भारीट पाया जाता है।

कृष्णशीर्ष भारीट के नर का सिर ऊपरी तथा पार्श्व भागों में काला होता है। पश्चशीर्ष या ऊपरी गर्दन का रङ्ग रक्त मिश्रित भूरा तथा सुनहला पीला होता है। शरीर के ऊपरी तल का रङ्ग नारङ्गी, बादामी होता है। पूँछ का रङ्ग भूरा किन्तु रक्त मिश्रित भूरी किनारी युक्त होता

है। वक्षस्थल के पार्श्व भाग बादामी होते हैं। शेष अधोतल का रङ्ग चमकीला पीला होता है। आँख के कोए का रङ्ग गहरा भूरा होता। पैर तथा पंजे लाल भूरे होते हैं। चोंच सींग के रङ्ग की भूरी होती है। सन्तानोत्पादन ऋतु के पश्चात् नर में सिर के काले रङ्ग पर लाल मिश्रित भूरे रङ्ग की किनारी होती है।

कृष्णशीर्ष का सन्तानोत्पादन क्षेत्र पूर्वी योरप में इटली से पूर्व का योरप, एशिया माइनर, फिलस्तीन, सीरिया, मेसोपोटामिया (ईराक), ईरान, अफगानिस्तान तथा बिलोचिस्तान है। यह शीत ऋतु में प्रवास कर पश्चिमी पाकिस्तान, तथा भारत में पूर्वी पञ्जाब, राजपूताना तथा दक्षिण भारत तक आता है। बम्बई प्रदेश में पश्चिम में बेलगाँव तथा खानदेश तक पहुँचता है। यह भारत का बारहमासी पक्षी नहीं है।

योरप में कृष्णशीर्ष भारीट ग्रीष्म ऋतु में अनेक स्थानों में दिखाई पड़ता है। यह वहाँ गाँवों के निकट खेतों में अंडे देता है। फिलस्तीन में भी यह फुलवाड़ियों तथा कब्रिस्तानों में अंडे देता है। किन्तु एशिया में यह सुनसान मैदानों में झाड़ियों के बीच अंडे देता है। भारत में इसके भारी दल अगस्त के अन्त में आकर खेती को भारी हानि पहुँचाते हैं। कहा जाता है कि इनके दल इतने भारी होते हैं कि जब वे वृक्षों पर विश्राम करने बैठे होते हैं तो सारा वृक्ष पीले रङ्ग का दिखाई पड़ने लगता है। नर पक्षियों का दल पृथक होता है तथा मादा पक्षी अपनी मंडली पृथक बनाए होते हैं। प्रवासी पक्षियों को शीत ऋतु में सन्तानोत्पादन वृत्ति से सर्वथा रहित पाया जाता है। अतएव इनमें अनेक पक्षियों के नर और मादा पृथक दल बनाए रहते हैं।

कृष्णशीर्ष भारीट मई, जून और जुलाई में अंडे देता है। पत्तों, पौधों के डंठल, घास आदि से मामूली घोंसले बना लेता है। उसमें बाल या पतली घास का नर्म अस्तर दे देता है। यह अन्य भारीटों के विपरीत झाड़ियों, लताओं या अनेक प्रकार के अन्य फलद छोटे वृक्षों के ऊपर

अपने घोंसले बनाता है किन्तु कभी-कभी अन्य भारीटों की भाँति भूमि पर भी घोंसले बना लेता है। इनके अंडे अन्य भारीटों से नहीं मिलते। उनका साधारण तलीय रङ्ग प्रायः उज्ज्वल से लेकर हल्के नीले हरेपन रङ्ग का होता है। उनमें कभी-कभी ही पीले रङ्ग की पुट होती है। उसमें धब्बों का रङ्ग गहरा भूरा या कुछ खाकी सा होता है। धब्बे प्रायः बड़े और ददोड़े युक्त होते हैं। ददोड़ों को मुद्रिका या टोपी रूप में बड़े सिरों पर देखा जाता है।

रक्तशीर्ष भारीट

स्था० नाम—गंदम (हि०) डालचिड़ी (सिं०)

रक्तशीर्ष भारीट के शरीर की लम्बाई साढ़े छः इञ्च से थोड़ी कम होती है। पङ्ख की लम्बाई साढ़े तीन इञ्च होती है। शेष अङ्गों की लम्बाई कृष्णशीर्ष भारीट के लगभग समान होती है।

नर रक्तशीर्ष के हनु की छोर तथा नेत्रों के आगे चंचु से मिला भाग सुनहला पीला होता है। पूर्ण सिर, कण्ठ तथा वक्षस्थल का रङ्ग सुनहला नारङ्गी भूरा होता है। पिछली गर्दन तथा गर्दन के पार्श्व भाग सुनहले पीले होते हैं। ऊपरी तल जैतूनी (धूमिल हरा युक्त) पीला होता है। उसमें भूरे रङ्ग की रेखाएँ होती हैं। अधोतल चमकीला पीला होता है। पूँछ भूरी तथा जैतूनी पीले रङ्ग की पतली किनारी युक्त होती है। पूँछ का आच्छादक पतत्र (पर) गहरा भूरा तथा हल्की श्वेत भूरी किनारी युक्त होता है। आँख के कोए गहरे भूरे, ऊपरी चोंच धूसर मिश्रित भूरी तथा निचली चोंच हरा मिश्रित भूरी होती है। पैर तथा पंजे भूरे होते हैं। शरद् ऋतु में पर गिराने के बाद सिर तथा वक्षस्थल के नारङ्गी भूरे परों पर हल्के भूरे तथा श्वेत रङ्ग का हाशिया बना होता है।

मादा रक्तशीर्ष का ऊपरी तल भस्मीय भूरा, चंचु तथा सिर का रङ्ग गहरे भूरे रङ्ग की रेखाओं युक्त होता है। पङ्ख के पर गहरे भूरे रङ्ग की तथा धूमिल पीले मिश्रित भूरे रङ्ग की चौड़ी किनारी युक्त होते हैं। निम्न तल धूमिल पीला होता है।

रक्तशीर्ष का प्रसार क्षेत्र ट्रांस कैस्पियन, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, काश्मीर, मेसोपोटामिया, फारस की खाड़ी, उत्तर में अल्ताई पर्वत तथा पश्चिमी साइबेरिया तक तथा दक्षिण में पश्चिमी पाकिस्तान, और भारत में पूर्वी पञ्जाब, राजपूताना, मध्यप्रदेश, बम्बई राज्य का बेलगांव तक का भाग, मद्रास, तथा पूर्व में छोटा नागपुर तक है।

रक्तशीर्ष के घोंसले कृष्ण या कालशीर्ष भारीट समान होते हैं। अंडे का साधारण तलीय रङ्ग श्वेत होता है। अधिकांश पक्षी मई में अंडे देते हैं, परन्तु अप्रैल से जुलाई तक अंडा देने के उदाहरण भी है। कुरम घाटी में इसके अंडे देने का प्रमाण मिलता है जो अब पश्चिमी पाकिस्तान में है।

एक बादामी भारीट होता है जो छः इञ्च लम्बे शरीर का होता है। उसका सन्तानोत्पादन क्षेत्र पूर्वी साइबेरिया तथा उत्तरी चीन है। शीत-ऋतु में प्रवास कर दक्षिणी चीन, हिन्दचीन, बर्मा, शान राज्य, चीन पर्वत, आसाम, मनीपुर, भूटान तथा सिक्किम तक फैल जाता है। यह चीन में पाला भी जाता है। इसको हमारे देश में लाली गंदम कहते हैं।

एक रेखित भारीट भी होता है। जिसके पूर्ण शरीर की लम्बाई पाँच इञ्च ही होती है। इसका प्रसार क्षेत्र अरब, फिलस्तीन, पश्चिमी पाकिस्तान, तथा भारत में इटावा तथा दक्षिण में सागर तक है।

चूड़ा भारीट

स्था० नाम—पथर चिरटा

चूड़ा भारीट के पूर्ण शरीर की लम्बाई साढ़े छः इञ्च से कुछ कम

होती है । पङ्ख की लम्बाई साढ़े तीन इञ्च, पूँछ पौने चार इञ्च, गुल्फ पौन इञ्च, तथा चोंच आध इञ्च होती है ।

नर चूड़ा भारीट के जंघे तथा पूँछ के निम्न आच्छादक परों को छोड़कर शेष निम्नतल तथा सिर, गर्दन, पीठ, कटि आदि का रङ्ग प्रायः काला होता है । पीठ, वक्षस्थल तथा पङ्खों का रङ्ग गहरा नीला हरा होता है । जंघे का रङ्ग भूरा तथा बादामी मिश्रित होता है । आँख के कोए गहरे भूरे, चोंच कालापन रङ्ग की होती है । पैर लाल भूरे तथा पंजे गहरे रङ्ग के होते हैं । चंगुल का रङ्ग कालापन युक्त होता है ।

मादा चूड़ा भारीट के ऊपरी तल का रङ्ग गहरा भूरा होता है प्रत्येक पर की किनारी स्लेटी हल्के हरे रङ्ग की होती है । निम्नतल धूमिल पीला होता है ।

चूड़ा भारीट निम्न हिमालय में काश्मीर से लेकर पूर्वी आसाम तक पाया जाता है । पश्चिमी भारत और राजस्थान के पहाड़ी भाग से लेकर लोहार डागा (बिहार) की पहाड़ियों तक भी पाया जाता है ।

यह पहाड़ों में कुछ सौ फुटों की ऊँचाई से लेकर ६००० फुट की ऊँचाई तक अंडे देता है । नागा पहाड़ों में इससे भी अधिक ऊँचाई, ८००० फुट तक भी अंडे देता है । बिहार में यह मैदानी भाग में भी अंडे देता है । अप्रैल से अगस्त तक अंडे देता है । किसी पत्थर या झाड़ी की ओट में भूमि पर घास या तिनकों से प्यालीनुमा घोंसले बनाता है । दीवालों, कगारों या मकान के छेदों में भी घोंसला बना लेता है । एक बार तीन-चार अण्डे देता है ।

चूड़ा भारीट खुले सूखे मैदानों के खेतों या ऊजड़ स्थलों में पहाड़ियों में रहता है । यह जहाँ ही स्थान पाता है, बस जाता है । बस्तियों के निकट भी इसे निडर होकर आते देखा जाता है ।

—:०:—

भांडीक वंश

शैलचटी

शैलचटी के पूर्ण शरीर की लम्बाई छः इञ्च, पङ्ख पाँच या साढ़े पाँच इञ्च, पूछ दो या सवा दो इञ्च, गुल्फ आधा इञ्च तथा चोंच तिहाई इञ्च लम्बी होती है।

शैलचटी के शरीर का ऊपरी तल, सिर तथा गर्दन के पार्श्व भाग पङ्ख, तथा पूँछ का रङ्ग स्लेटी भूरा होता है। पूँछ के परों पर एक बड़ी श्वेत पट्टी होती है। केवल मध्यवर्ती तथा बिल्कुल बाहरी परों पर यह पट्टी नहीं फैली होती। हनु, कण्ठ, अग्रवक्षस्थल का रङ्ग धूमिल लाल मिश्रित भूरा तथा धूमिल भूरे रङ्ग के धब्बों युक्त होता है। पार्श्व भाग स्लेटी होते हैं। पिछला वक्षस्थल तथा उदर लाल मिश्रित भूरा स्लेटी होता है। आँख गहरी भूरी, चोंच काली तथा पैर और पंजे लाल श्वेत से लेकर धूमिल लाल भूरे होते हैं।

शैलचटी का प्रसार क्षेत्र उत्तरी अफ्रिका, दक्षिणी योरप, तुर्किस्तान तक पश्चिमी एशिया, तिब्बत, तथा चीन के कंसू और यन्नान प्रदेश, दक्षिण में पाकिस्तान का सीमान्त प्रदेश, तथा भारत में मैसूर, नीलगिरि, पलनी पहाड़ी तथा उत्तर त्रावणकोर तक के स्थल हैं। पूर्व में बर्मा में भी यह पायी जाती है।

शैलचटी हिमालय के ६००० फुट से लेकर १५००० फुट ऊँचे पहाड़ों तक में अंडे देती है। यह मिट्टी के लोंदे से छिछला प्याला सा बनाती है जिसका मुँह ऊपर की ओर खुला और अरक्षित ही होता है। उसमें परों का अच्छा अस्तर देती है। यह विचित्र घोंसला कहीं उभड़ी

निकली चट्टान के आश्रय में बना होता है। हिमालय में ये झुण्ड रूप में घोंसले बनाती हैं परन्तु योरप में इन्हें झुण्डों में घोंसला बनाते नहीं पाया जाता। तीन से पाँच तक अंडे एक बार में देती है। दक्षिण योरप में सन्तानोत्पादन काल मई जून है परन्तु हिमालय में सन्तानोत्पादन काल जून जुलाई है।

शैलचटी अबाबील की तरह उड़ते रहकर ही कीड़े पतिंगे पकड़ लेती है किन्तु यह अबाबील की तरह तीव्र या सीधी उड़ाकू नहीं होती। यह शीत ऋतु में दक्षिण भूभागों में प्रवास करती है। इसको प्रवास करने जाते या लौटते समय झुण्ड रूप में अवश्य उड़ते देखा जाता है। अन्य समयों में भी प्रायः झुंड में उड़ती है।

धूसर शैलचटी

धूसर शैलचटी के पूर्ण शरीर की लम्बाई पाँच इञ्च, पङ्ख की लम्बाई चार या साढ़े चार इञ्च, पूँछ पौने दो इञ्च, गुल्फ (मुखपाद) लगभग एक सेंटीमीटर या $\frac{१}{२}$ इञ्च, तथा चोंच चौथाई इञ्च होती है। गौरैया से इसका आकार छोटा होता है।

धूसर शैलचटी का रङ्ग स्लेटी भूरा होता है। पूँछ लगभग चौकोर होती है। पङ्ख तथा उड़ान अबाबील सरीखी होती है। सभी पुच्छ पतत्रों (परों) पर एक श्वेत धब्बा होता है जो मध्यवर्ती या बिल्कुल बाहरी परों पर नहीं होता। उड़ान के समय यह जब मुड़ रही हो तो यह श्वेत धब्बा स्पष्ट दिखाई पड़ता है। नर और मादा का रूप एक सा होता है। अबाबीलों के साथ चट्टानो के पास इन्हें भी थोड़ी संख्या में देखा जाता है। साधारण शैलचटी इससे कुछ बड़ी तथा धूमिल होती है। अधोतल कुछ उजला सा रखती है।

धूसर शैलचटी का प्रसार क्षेत्र मिस्र, उत्तरी अरब, फिलस्तीन, ईरान, अफगानिस्तान, तथा पश्चिमी पाकिस्तान है। उत्तरी पूर्वी

अफ्रीका की धूसर शैलचटी भी इसी के समान होती है। यह पुराने पत्थर निर्मित भवन की प्रेमी होती है। ऐसे मकान, दुर्ग, प्राचीन स्मारक



धूसर शैलचटी

कहीं सघन बस्ती के मध्य हों तो भी वहाँ इसका अड्डा जमता है। दो या तीन चिड़ियाँ साथ उड़ती मिल सकती हैं। एलोरा तथा अजन्ता की गुफाओं में तथा उनके आस-पास के स्थलों में इसका छोटा झुण्ड अवश्य पाया जाता है। यह उड़ने पर चिट चिट करती रहती है।

इसके सन्तानोत्पादन का समय निवास स्थान के अनुसार विभिन्न होता है। परन्तु प्रायः साल भर तक अंडे देती है। वर्ष में साधारणतया दो बार अंडे देती है। साधारण शैलचटी की ही भाँति इसके घोंसले

होते हैं। दो या तीन अंडे एक बार देती है। अण्डे श्वेत होते हैं जिन पर लाल भूरे रङ्ग के अनेक रूपों की चित्तियाँ होती है। नर और मादा दोनों ही घोंसला बनाने तथा बच्चों के पोषण में हाथ बटाते हैं। इसके घोंसले सदा एकाकी ही होते हैं। किन्तु कहीं-कहीं उनको छोटे झुण्ड रूप में भी पाया जाता है।

अबाबील (सामान्य भाण्डीक)

स्था० नाम—अबाबील (हि०)

शैलचटी पक्षियों के सगोत्रीय से पक्षियों में अबाबील (भांडीक) पक्षियों की गिनती है। ये भिन्न-भिन्न प्रजातियों और जातियों के पक्षी हैं जो भांडीक नाम का एक बड़ा वंश बनाते हैं। इनमें भाण्डीक नाम से एक प्रसिद्ध प्रजाति भी है। उसकी कई जातियाँ पाई जाती हैं। इनकी पीठ का अधिकांश गहरा, चमकीला लौहवत नीला होता है। अधिकांश की पूँछ अधिक दूर तक दो फाँको में फटी होती है परन्तु कुछ जातियों की दुम चौकोर भी होती है।

सामान्य भाण्डीक का आकार घरेलू गौरैया (गृह कुलिंग) के बराबर होता है किन्तु लम्बी फंकदार पूँछहोने के कारण पूर्ण शरीर की लम्बाई ८ इंच तक होती है। पंख की लम्बाई साढ़े चार से सवा पाँच इंच तक, पूँछ की लंबाई पौने तीन इञ्च से लेकर पौने पाँच इंच तक, गुल्फ की लम्बाई आधा इंच तथा चोंच की लम्बाई एक सेंटीमीटर से कम या तिहाई इंच होती है।

इस पक्षी के शरीर का ऊपरी तल चमकीला लौहवत नीला, भाल तथा कण्ठ बादामी, निम्न तल पीलापन युक्त श्वेत, तथा पूँछ गहरी फंकीय होती है, नर और मादा का रूप समान होता है। यह जल के निकट के स्थानों में झुण्डों में रहता है।

सामान्य भांडीक का सन्तानोत्पादन क्षेत्र योरप, उत्तरी पश्चिमी

अफ्रीका, पश्चिमी साइबेरिया में यनीसी नदी तक, एशिया माइनर तथा हिमालय में काश्मीर से लेकर सिक्किम तक तिब्बत और आसाम की पहाड़ियाँ हैं। अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, गिलगिट, लद्दाख तथा उत्तरी तिब्बत के उत्पन्न पक्षी कदाचित योरोपीय उपजाति से विभिन्न दूसरी उपजाति के होते हैं। उनका अधोतल अधिक श्वेत होता है। काश्मीर का सामान्य भांडीक कदाचित योरोपीय उपजाति का ही है। उसका अधोतल योरोपीय उपजाति की तरह गहरे रंग का होता है। शीत ऋतु में सामान्य भाण्डीक दक्षिणी अफ्रीका, सम्पूर्ण भारत, सीलोन, बर्मा तथा बोर्नियो और फिलीपाइन तक पहुँचता है।

सामान्य भाण्डीक (अबाबील) सारे काश्मीर, कमायूँ तथा गढ़वाल में बहुसंख्यक उत्पन्न होता है। थोड़ी संख्या में पूर्व में सिक्किम तक भी ४००० फुट से ८००० फुट की ऊँचाई तक और अधिकांशतः ५००० तथा ६००० फुट की ऊँचाई के मध्य अंडे देता है। योरप तथा भारत में समान रूप से ही मिट्टी के लोंदों से अपना घोंसला बनाता है। उसमें परों का नर्म अस्तर भली-भाँति देता है। यह किसी सुविधाजनक आगे निकले हुए चट्टानी खण्ड, बरामदों के बाहर निकले भाग या मकानों के अन्दर ही अपने घोंसले बना लेता है। इसका घोंसला छिछले प्याले को तरह ऊपर से खुले मुख का होता है। कभी-कभी चपटे स्थल पर घोंसला बनाने पर पेंदी में मिट्टी का उपयोग नहीं होता, केवल दीवाल ही मिट्टी की बनी होती है। चार-पाँच या कभी-कभी छः अंडे तक देता है। अंडों का रंग श्वेत तथा लाल भूरे, या गुलाबी भूरे रंग की चित्तियाँ धब्बे आदि युक्त होता है। अप्रैल से जुलाई तक अंडे दिये जाते हैं। वर्ष में कम से कम दो बार अन्यथा तीन बार अंडे दिये जाते हैं।

सामान्य भाण्डीक भारत तथा अन्य देशों में प्रवासी पक्षी ही है। यह शीत ऋतु में मैदानी भागों में सीलोन तक फैल जाता है। सीलोन में दूसरी उपजाति की प्रचुरता होती है। दक्षिण की ओर का प्रवास सितंबर

में प्रारम्भ होता है। सीलोन तक अक्टूबर में ये पक्षी पहुँचते है। परन्तु लौटानी प्रवास अप्रैल में ही या मार्च के अन्तिम दिनों में होता पाया जाता है। जून और जुलाई में उत्पन्न शिशु पक्षी भारत में जुलाई और अगस्त में आ जाते हैं परन्तु सबसे बाद में प्रवासी पक्षी भारत से मई जून तक लौटते हैं। इसलिए इनको वर्ष भर के मासों में देखने का अवसर मिल जाता है जिससे इनके बारहमासी होने का भ्रम हो सकता है। प्रवास के पूर्व वे बहुत भारी झुण्डों में एकत्र होते हैं। सरपतों या टेलीग्राफ के तारों पर उनका समूह बैठ जाता है। वहाँ से वे मधुर गायन तथा भव्य उड़ान करते प्रवास स्थल में पहुँचते हैं।

भारत रज्जुपुच्छ भांडीक

स्था० नाम लैशरा (हि०)

आकार—पंख—पौने पाँच इञ्च, पूँछ—पौने तीन इंच से लेकर साढ़े पाँच इंच तक, गुल्फ—आधा इञ्च से कम, चोंच—तिहाई इञ्च।

रज्जुपुच्छ भाण्डीक घरेलू गौरैया के बराबर आकार का पक्षी है। इसके शरीर का ऊपरी तल चमकीला, लौहवत् नीला, 'सिर बादामी टोपी युक्त तथा अधोतल श्वेत होता है। इसके शरीर का चमकीला अधोतल तथा पीछे की ओर निकले दो तार अन्य भांडीकों से विशेषता प्रकट करते हैं। इसी कारण इसका नाम रज्जुपुच्छ पड़ा है। मादा में ये तार छोटे होते हैं। जोड़े या झुण्ड रूप में जलीय भागों के निकट खुले खेतों में यह रहता है।

रज्जुपुच्छ भांडीक का प्रसार क्षेत्र ईरान, अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, पाकिस्तान (पश्चिमी) तथा सारे भारत में दक्षिण में मैसूर तथा उत्तरी त्रावणकोर तक पाया जाता है। पूर्वी बङ्गाल (पाकिस्तान) तथा आसाम के आर्द्र भू भागों में नहीं पाया जाता किन्तु उत्तरी-पश्चिमी बर्मा,

उत्तरी तथा दक्षिणी शान राज्य और दक्षिण बर्मा में पेगू और तनासरीम तक पाया जाता है।

यह पक्षी अपने सारे प्रसार क्षेत्र के मैदानी भाग में फरवरी से अप्रैल तक तथा द्वितीय बार अगस्त से अक्टूबर तक सन्तानोत्पादन करता है। किन्तु साल के किसी मास में भी इक्के-दुक्के घोंसले हो सकते हैं। मई तथा जून की भीषण गर्मी में कदाचित ही कोई कहीं सन्तानोत्पादन करता हो। ६००० फुट ऊँची पहाड़ियों तथा हिमालय में सन्तानोत्पादन ऋतु मई से जुलाई तक है। पंख का घोंसला प्यालीनुमा बनाता है। उसमें पहले घास के टुकड़ों की परत बिछाकर ऊपर से परों का अस्तर करता है। चट्टानों पर, पुलों के नीचे, बाँधों, दीवालों, छतों या मकानों के बारजे के नीचे घोंसले बने होते हैं। यह घोंसला बनाने का स्थान किसी जलखंड के निकट या ऊपर ही ढूँढ़ता है। नदी, तालाब या कुँओं से दूर कोई-कोई घोंसला ही बनता होगा। दो से चार तक अंडे एक बार में देता है। साधारण अबाबील के अंडों के रंग के ही अंडे इसके भी होते हैं।

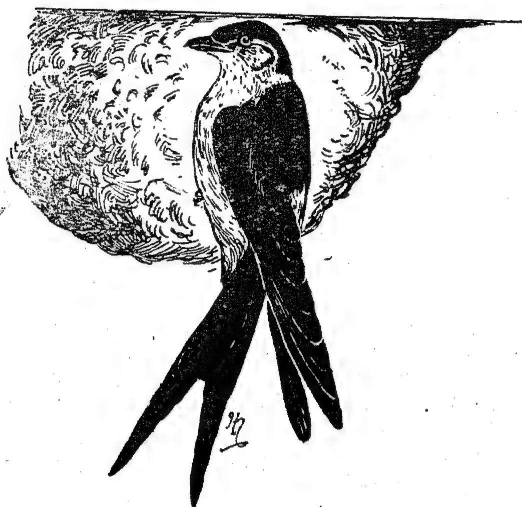
रज्जुपुच्छ का स्वभाव साधारण भांडीक (अबाबील) सदृश ही होता है, परन्तु यह अधिक तीव्र, तथा उद्यमी होता है। बड़ा शोर करता है। अपने शिशु को उड़ते हुए ही चारा चुगाता है। प्रातः संध्या अधिक क्रियाशील रहता है। यह बारहमासी पक्षी है। झुंड में रहने का स्वभाव इसमें नहीं होता।

चीन रेखित भांडीक

स्था० नाम—इनसई गोबी (कच्छ० नागा)

आकार—पक्ष—पौने पाँच से सवा पाँच इंच तक, पूँछ—सवा तीन इञ्च से सवा चार इञ्च तक, गुल्फ—आधा इञ्च से कुछ अधिक, चोंच—तिहाई इञ्च।

चीन रेखित भाण्डीक की ऊपरी भाग की ग्रीवा या पश्चशीर्ष पर बादामी रङ्ग का एक आधा पट्टा होता है। कटि प्रदेश का रङ्ग बादामी



चीन रेखित भांडीक

होता है। अधोतल बारीक रेखाओं से अङ्कित होता है। अधोतल का रङ्ग श्वेत तथा हलके पीले रङ्ग की पुटयुक्त होता है। पुरानी मस्जिदों या भवनों में यह रहता है।

चीन रेखित भांडीक का सन्तानोत्पादन क्षेत्र मध्य, दक्षिणी चीन, तथा अन्नाम, यन्नान, उत्तरी बर्मा और आसाम की पहाड़ियाँ हैं। दक्षिण में जावा तथा अन्य द्वीपों तक पाया जाता है।

यह पंख से घोंसला बनाता है। उसमें या तो सुराहीनुमा द्वार होता है या मामूली गोलाकार विवर होता है अथवा अबाबीलों की तरह सर्वथा खुला ऊपरी तल ही होता है। खसिया तथा कच्चर की पहाड़ियों में यह

जब तब पहुँच जाता है। वहाँ ऊँचे खड़े पहाड़ी कगारों या बहुत कम ढालू चट्टानों के ऊपर छोटे झुंडों में घोंसले बनाता है। उसके घोंसले वहाँ पर सुराहीनुमा मुख के बने होते हैं। उनमें परों का मोटा अस्तर होता है। परों के साथ घास भी मिली होती है। तीन से पाँच तक अंडे एक बार में देता है। अन्य भांडीकों की भाँति ही उन अंडों के भी रङ्ग होते हैं। कभी-कभी उनमें लाल से धुँधले धब्बे होते हैं। चीन में सन्तानोत्पादन ऋतु मई जून है; परन्तु खसिया पहाड़ी (आसाम) में अप्रैल और मई है।

इसका स्वभाव रज्जुपुच्छ भांडीक-सा ही होता है। परन्तु यह कुछ प्रवासी होता है। ग्रीष्म और शीत ऋतु का व्यवस्थित प्रवास तो नहीं करता, अनेक पक्षी बारहमासी ही होते हैं। परन्तु कुछ पक्षी उत्तर खण्ड के सन्तानोत्पादन स्थल में अप्रैल में प्रवास करते हैं। वहाँ से सितम्बर तथा अक्टूबर में लौट आते हैं।

भारत रेखित भांडीक

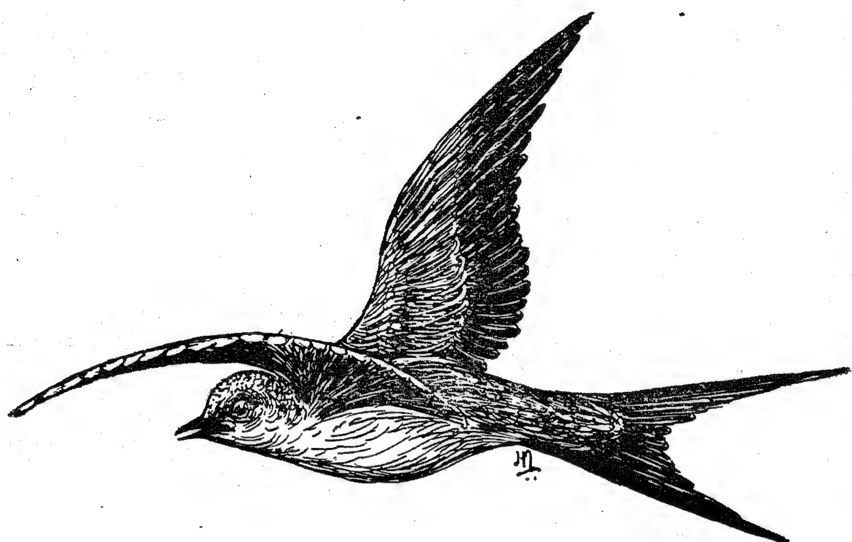
स्था० नाम—मस्जिद अबाबील

आकार—पङ्ख—चार से साढ़े चार इञ्च तथा, पूँछ—ढाई से सवा तीन इञ्च तक, गुल्फ—आधा इञ्च, चोंच—तिहाई इञ्च।

भारत रेखित भांडीक चीन रेखित भांडीक सरीखा ही होता है। किन्तु इसके कटि प्रदेश में रेखाएँ नहीं होती हैं या बहुत धूमिल होती है। निम्नतल श्वेत होता है। वक्षस्थल, पार्श्व तथा उदर में हल्के पीले रङ्ग की पुट होती है। रेखाएँ भी बहुत पतली तथा थोड़ी होती हैं।

भारत रेखित भांडीक का सन्तानोत्पादन क्षेत्र सारे भारत का, हिमालय के अंचल से दक्षिण में नीलगिरि तक का भूभाग है। शीत ऋतु में त्रावनकोर में भी चला जाता है। पश्चिमी बङ्गाल तक पूर्व में पाया जाता है।

वह भारत के अधिकांश भाग में अप्रैल से अगस्त तक सन्तानोत्पादन करता है। दक्षिण भारत की सर्वोच्च पहाड़ियों तक पहुँचता है।



भारत रेखित भांडीक

तथा हिमालय में तीन या साढ़े तीन हजार फुट ऊँची पर्वतमाला तक निवास बनाता है। इसका घोंसला किसी भी प्रकार के मकान पर या पुलों, नालियों के मेहराब के नीचे अथवा चट्टानों या दीवाल में घोसला बनाता है। तीन या चार अंडे एक बार में देता है। अंडे श्वेत होते हैं।

ये भांडीक एकाकी घोंसले ही बनाते हैं किन्तु कभी-कभी एक दर्जन या कोड़ी घोसलों का उपनिवेश एक स्थान पर होता है। वर्ष में दो या

तीन बार सन्तानोत्पादन करते हैं। बच्चे के उड़ जाने के बाद भी माता-पिता पुराने घोसले में बसेरा लेते रहते हैं।

भारत रेखित भांडीक सब जगह बारहमासी पक्षी ही होता है। परन्तु भोजन की न्यूनता से स्थानीय रूप में स्थान बदल सकता है। वे सुनसान स्थलों में भी पाये जाते हैं परन्तु बस्ती उन्हें अधिक प्रिय ज्ञात होती है। यह वृत्ति तो अन्य अबाबीलों की तरह ही होती है। परन्तु इनका शब्द अधिक सङ्गीतमय तथा मधुर होता है।

—: ० :—

खंजन वंश

पाश्चात्य श्वेत खंजन

स्था० नाम —धोबिन

आकार—पूरी लम्बाई-पौने नौ इञ्च, पङ्ख—साढ़े तीन इञ्च से पौने चार इञ्च तक, पूँछ—चार इञ्च से कुछ कम, गुल्फ-एक इञ्च, चोंच आधा इञ्च।

श्वेत खञ्जन का आकार श्याम खञ्जन के बराबर ही होता है। शीत ऋतु में काली ठुड्डी का अभाव होता है। ठुड्डी (हनु) तथा कण्ठ का रङ्ग अन्य अधोतल भाग की तरह बिल्कुल श्वेत होता है। नर और मादा समान रङ्ग के होते हैं। खुले घास के मैदानों में शिथिल झुंड घूमते रहते हैं।

श्वेत खञ्जन योरप के अधिकांश भाग में पाया जाता है। शीत ऋतु में प्रवास कर अफ्रीका पहुँचता है। पाकिस्तान के सीमान्त तथा पञ्जाब प्रदेश में भी कभी-कभी आ जाता है। झेलम में इस पक्षी के आने के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं।

श्वेत खञ्जन अन्तिम अप्रैल से प्रारम्भ जुलाई तक अंडे देता है। वर्ष में प्रायः दो बार सन्तानोत्पादन करता है। घोंसले निवास स्थान के अनुकूल बनते हैं। यदि कहीं दीवाल, मकान या वृक्ष के छोटे छिद्र में घोंसला हो तो केवल नर्म घास, पर या ऊन का अस्तर ही दिया होता है किन्तु यदि वह कगारे, बलुहे टीले, घनी झाड़ी या वृक्ष के बड़े छिद्र में बना हो तो वह भारी भरकम रूप का होता है। टहनियाँ, जड़, घास-पात आदि जुटा कर उस पर उपयुक्त विधि से अस्तर भी दिया होता है।

चार से छः अण्डे एक बार में उत्पन्न होते हैं। अंडों का रङ्ग श्वेत तथा लाल भूरी बहुसंख्यक चित्तियों युक्त होता है। वे चित्तियाँ सर्वत्र फैली होती हैं, किन्तु कभी-कभी बड़े सिरे पर कुंडली या टोपी रूप में होती हैं।

भारत श्वेत खंजन

स्था० नाम—धोबिन

भारतीय श्वेत खञ्जन की पाश्चात्य श्वेत खञ्जन से यह विशेषता होती है कि वह भारत में साधारणतया पाया जा सकता है किन्तु रङ्ग में भी इन दोनों में थोड़ा भेद यह देखा जाता है कि पाश्चात्य श्वेत खञ्जन के ऊपरी तल के पर (पतत्र) अधिक गहरे रङ्ग के होते हैं। इन दोनों श्वेत खञ्जनों के शिर के पार्श्व भाग सदा श्वेत होते हैं, परन्तु एक उप-जाति कृष्णकर्ण ऐसी होती है जिसके सिर के पार्श्व भाग सदा काले रङ्ग के होते हैं। यह काश्मीर में भी पैदा होती है। एक पारसीक (ईरानी) उपजाति होती है जिसके सिर के पार्श्व भाग (कर्ण) काले श्वेत मिश्रित होते हैं।

दोनों श्वेत खंजनों का ग्रीष्म ऋतु का रंग—भाल, अग्रशीर्ष, सिर के पार्श्वभाग तथा गर्दन का रङ्ग श्वेत, शेष शीर्ष, अगली गर्दन, पिछली गर्दन, ठुड्डी (हनु), कंठ, तथा ऊपरी वक्षस्थल का रङ्ग काला होता है। ऊपरी वक्षस्थल शेष अधोतल से स्पष्ट पृथक रङ्ग प्रकट करता है। शेष अधोतल श्वेत होता है। ऊपरी तल काला, श्वेत तथा भूरा होता है। पूँछ काले तथा श्वेत रङ्ग की होती है। आँख भूरी, चोंच काली, पैर तथा पञ्जे सींग से भूरे रङ्ग के समान लेकर काले तक होते हैं।

शीत ऋतु में दोनों श्वेत खञ्जनों का भाल, हनु तथा कण्ठ श्वेत होता है। कभी-कभी पीलेपन की पुट भी होती है।

मादा का रंग—मादा ग्रीष्म में नर की भाँति होती है किन्तु प्रायः

भाल पर गहरे रङ्ग के धब्बे होते हैं। हनु तथा पिछली गर्दन प्रायः धूसर रङ्ग से चिन्हित होती है। शीत ऋतु में सिर पर काला रङ्ग नहीं होता। पीठ की तरह धूसर रङ्ग ही होता है। श्वेत भाल पतला होता है तथा धूसर रङ्ग की पुट युक्त होता है। वक्षस्थल पर काला रङ्ग थोड़े स्थान में ही होता है। परों में श्वेत किनारी होती है।

भारतीय श्वेत खञ्जन का सन्तानोत्पादन क्षेत्र पश्चिमी साइबेरिया में यनीसी नदी तथा एटलस पर्वत तक है। पश्चिम में काकेशस तथा उत्तरी तुर्किस्तान तक है। इसका शीत ऋतु में प्रसार क्षेत्र दक्षिण में अफगानिस्तान, बिलोचिस्तान, ईरान, तथा अधिकांश भारत, पूर्व में बङ्गाल तथा उत्तरी आसाम तक है।

भारतीय तथा पाश्चात्य श्वेत खञ्जन एक स्वभाव के होते हैं। यह निडर पक्षी होता है। नगरों, गाँवों या फुलवाड़ियों में यह कीड़ों का शिकार करता दिखाई पड़ता है। यह तीव्र वेग से दौड़ता है। कोई कीड़ा उड़ भागने का प्रयत्न करता है तो यह पैर फट-फटाकर पीछा करता है। रह-रहकर इसकी दुम नीचे ऊपर हिलती रहती है। रात को श्वेत खञ्जन बहुसंख्यक रूप में विशेषतया नरकुलों में बसेरा लेते हैं। भारत में इनका आगमन जुलाई के दूसरे या तीसरे सप्ताह में होता है। इनकी लौटानी यात्रा अप्रैल के अन्त तक समाप्त हो जाती है।

श्वेत खञ्जन की कई उपजातियाँ हैं। उनमें कृष्ण कर्ण खञ्जन की पहचान सहज है। उसके सिर के पार्श्व भाग काले होते हैं। यह उप-जाति काश्मीर में ६००० फुट से लेकर ८००० फुट की ऊँचाई तक अंडे देती है। तुर्किस्तान से लेकर दक्षिण पश्चिम बैकाल झील तक और दक्षिण में अफगानिस्तान, गिलगिट, लद्दाख तक अंडे देती है।

वृहत शबल खञ्जन

स्था० नाम—ममुला, भुइँ ममुला, खंजन (हि०)

आकार—पूरी लम्बाई साढ़े नौ इञ्च, पङ्ख चार इञ्च, पूँछ चार इञ्च, गुल्फ—एक इञ्च, चोंच—दो तिहाई इञ्च ।

वृहत शबल खञ्जन बुलबुल के आकार का पक्षी है । इसके शरीर का रङ्ग दहँगल (दध्यक) की भाँति श्वेत और काला होता है । आँख के ऊपर एक प्रशस्त श्वेत भौं इसकी विशेषता होती है ।

खञ्जन पक्षियों की रङ्ग-विविधता आश्चर्यजनक होती है । उनके भेद विभेदों के नाम ध्यान देने पर स्मरण रक्खे जा सकते हैं । उदाहरण के



वृहत शबल खजन

रूप में हम श्वेत खञ्जनों को ही लेते है । उनका एक वर्ग ऐसा होता है जिनमें आँखों के ऊपर नीचे तक जाती कोई काली पट्टी नहीं होती । इनके भी तीन विभेद होते हैं । पहले वे जिनके सिर के पार्श्व भाग-या कर्ण श्वेत होते हैं । उनमें हम पाश्चात्य श्वेत खञ्जन तथा भारतीय श्वेत खञ्जन की गिनती करते हैं । इस विभेद में भी पाश्चात्य श्वेत खञ्जन की

पीठ गहरे रङ्ग की तथा भारतीय श्वेत खञ्जन की हल्के रङ्ग की होती है। ईरानी (पारसीक) श्वेत खञ्जन के कर्ण या सिर के पार्श्व भागों का रंग काला श्वेत मिश्रित रख कर दूसरा वर्ग सा बनाता है। इसी प्रकार तीसरा वर्ग कहने के लिए काश्मीरी या कृष्णकर्ण खञ्जन का नाम ले सकते हैं, जिनके कर्ण या सिर के पार्श्व भाग काले होते हैं। इन तीनों वर्गों को भी एक और लक्षण से एक पक्षी से पृथक समझा जा सकता है जिसकी ठुड्डी श्वेत होती है। उसे श्वेतहनु खञ्जन कह सकते हैं। किन्तु उपर्युक्त तीन वर्गों में कृष्ण हनु होता है। श्वेतहनु बैकाल (साइबेरिया), मंचूरिया आदि में उत्पन्न होकर आसाम तक आता है। अब इन सब वर्गों, उपवर्गों को आँखों को घेर कर किसी रंगीन पट्टी या रेखा के युक्त न होने से हम नेत्र रेखाहीन ही समझें तो इन सबसे पृथक एक पक्षी अपनी आँखों पर से काली पट्टी या रेखा बनाये होने से रेखिनेत्र खञ्जन नाम पाता है। यह उत्तरी पूर्वी साइबेरिया, धुर उत्तर-पश्चिमी अमेरिका, पूर्वी मंगोलिया, मंचूरिया आदि में सन्तानोत्पादन करता है तथा शीत ऋतु में प्रवास कर दक्षिणी चीन, फारमोसा, हिन्दचीन, बर्मा, पूर्वी बङ्गाल, (पाकिस्तान) आसाम आदि तक आता है। नेपाल तक भी आने के प्रमाण हैं।

नेत्र-रेखाहीन और नेत्र-रेखा युक्त खञ्जनों को भी एक बड़ा वर्ग मान कर श्वेत खंजरीट नाम रक्खें तो उनसे सर्वथा पृथक एक जाति चितकबरे या शबल खञ्जन की मिलेगी जो एक बड़ी प्रजाति का ही दूसरा अङ्ग है। इन दो रूपों में पहली जाति की पहचान यह है कि ग्रीष्म में उनकी पीठ कभी काली नहीं मिलती, परन्तु शबल खञ्जन की पीठ ग्रीष्म में काली होती है। ये दोनों जातियाँ खंजरीट नाम की प्रजाति के ही विभिन्न अङ्ग हैं।

शबल खञ्जन की एक छोटी जाति हागसन नाम के शोधकर्ता ने खोज निकाली थी, इसलिए इस जाति का नाम उसके नाम पर ही

प्रसिद्ध है। यह छोटा शबल खञ्जन अपना सन्तानोत्पादन क्षेत्र हिमालय में गिलगिट से सिक्किम तक तथा दक्षिणी पश्चिमी तिब्बत में रखता है। शीत ऋतु में प्रवास कर भारत के मैदानी भाग तथा आसाम की निचली पहाड़ियों में फैल जाता है। बङ्गाल, बिहार में विशेष फैलता है तथा मध्यप्रदेश तक भी यह पहुँचता है। यह ६००० फुट से लेकर १२००० फुट की ऊँचाई तक मई, जून, जुलाई में अंडे देता है। एक वर्ष में दो बार सन्तानोत्पादन करता है। यह अपना घोंसला टीलों या नदियों के बीच छोटे द्वीपों या नदी के कगारों, पत्थर की दीवालों या धरती पर ही किसी पत्थर के ढोंके के नीचे बना लेता है। किसी उजड़े मकान या कभी-कभी बसे हुए मकान में भी घोंसला बना लेता है, परन्तु यह प्रायः मनुष्य की बस्तियों के निकट घोंसला नहीं बनाता। अन्य श्वेत खञ्जनों की भाँति इसके भी घोंसले होते हैं, परन्तु काश्मीर में ऊन की बहुलता से लाभ उठाकर यह अपना घोंसला भी पूर्णतया ऊन से ही बनाता है। चार या छः अण्डे एक बार में देता है। अण्डे प्रायः भूरे या लाल छींटे युक्त होते हैं।

बृहत शबल खञ्जन का प्रसार क्षेत्र हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक समग्र भारत है। पूर्व में भारतीय बङ्गाल तथा उड़ीसा तक जाता है, परन्तु पाकिस्तान और आसाम तक नहीं पहुँचता।

बृहत शबल खञ्जन प्रायः भारत भर में सन्तानोत्पादन करता है। दक्षिण भारत में सर्वोच्च पर्वतों तक पहुँचता है तथा हिमालय में २००० फुट की ऊँचाई तक और कभी-कभी ४००० फुट की ऊँचाई तक पहुँचता है। मार्च, अप्रैल और मई अण्डे देने के मास हैं। किन्तु कुछ पक्षी द्वितीय बार जुलाई, अगस्त, सितम्बर में भी सन्तानोत्पादन करते हैं। जल के निकट किसी भी स्थान पर किसी छेद में घोंसला बना लेता है। कगारे, दीवाल, उजड़े या बसे मकान, पुल, बाँध आदि में यह घोंसला रखता है। घास-पात, डंठल, पतली टहनी आदि का घोंसला बनाकर

उसमें बाल, ऊन या परों का अस्तर देता है। यह तीन चार अण्डे एक बार में देता है।

बृहत् शबल निडर तथा मनुष्य के निकट रहने वाला पक्षी है। बस्तियों, छत या मुंडेरी पर आ बैठता है। बहुसंख्यक होने पर निर्जन स्थानों में जल के निकट पाया जा सकता है किन्तु अधिकांशतः बस्ती का प्रेमी है। सर्वत्र बाग-वाटिका में दो एक बृहद शबल खञ्जन मिल सकते हैं।

श्याम खंजन

आकार—पूर्ण लम्बाई—आठ इञ्च, पङ्ख—तीन इञ्च से साढ़े तीन इञ्च तक, पूँछ—पौने तीन इञ्च से तीन इञ्च तक, गुल्फ—लगभग एक इञ्च, चोंच—आधा इञ्च।

श्याम खञ्जन सन्तानोत्पादन ऋतु के अतिरिक्त समय में अपना ऊपरी तल नीला धूसर, हरा मिश्रित पीला कटि प्रदेश, पीलापन युक्त श्वेत अधोभाग रखता है जो पूँछ की ओर चमकीला हो गया रहता है। हनु तथा कण्ठ पर काला रंग नहीं रहता। यह बिल्कुल गौरैया के आकार का पक्षी है। इसकी चोंच दुर्बल होती है तथा दुम विशेष लम्बी होती है, जिसे वह ऊपर नीचे हिलाया ही करता रहता है। शीत ऋतु में नर और मादा का रंग समान होता है नदियों, सोतों आदि के तट पर यह एकाकी पाया जाता है। अनेक रूप रंग के अन्य खञ्जन भी धूसर (खाकी) तथा पीले रंग के हमारे देश में जाड़े में श्याम खञ्जन के साथ ही आते हैं जिनका भेद प्रभेद जानना कठिन ही होता है किन्तु पर गिरा कर कुछ दिनों में जब ग्रीष्म ऋतु के आगमन के कुछ पूर्व नए रूप रंगों के पर धारण कर लेते हैं तो उनकी पहचान की जा सकती है।

श्याम खञ्जन का सन्तानोत्पादन क्षेत्र यूराल पर्वत से लेकर कैमस्चटका प्रायद्वीप तक तथा दक्षिण में सफेद कोह तथा हिमालय तक है। शीत ऋतु में सारे भारत में फैलकर प्रवास करता है। आसाम तथा ऐंडमन बर्मा और मलाया प्रायद्वीप में भी जाता है।

श्याम खञ्जन पाँच हजार से दस या बारह हजार फुट की ऊँचाई तक विशेषकर सात और नौ हजार फुट तक की ऊँचाई के स्थलों में अन्तिम अप्रैल से लेकर अन्तिम जुलाई तक सन्तानोत्पादन करता है। अपना घोंसला घास, जड़, या कभी-कभी श्वेत ऊन से मिला कर केवल ऊन का ही बनाता है। बाल और ऊन के मिश्रण या किसी एक पदार्थ का अस्तर देता है। नदी के बीच में छोटे द्वीपों पर किसी चट्टान या गिरे हुए वृक्ष के नीचे अपना घोंसला बना लेता है। नदी के कगारों, लम्बी घासों या घनी झाड़ी में भी घोसला बनाता है।

श्याम खञ्जन मैदान तथा नदी दोनों के पास पाया जाता है। जंगल के बीच बहते सोतों के निकट भी रहता है। यह निडर और साहसी होता है। बस्तियों में बेधड़क चला आता है। इसकी बोली मन्द तथा मधुर होती है।

भारत तुलिका

स्था० नाम—रुगेल, चरचरी (हि०)

आकार—पङ्ख—तीन इञ्च से साढ़े तीन इञ्च तक, पूँछ—सवा दो इञ्च से ढाई इञ्च तक, गुल्फ—एक इञ्च, चोंच—आधा इञ्च।

भारत तुलिका का रङ्ग मादा गृह कुलिंग (घरेलू गौरैया) सरीखा होता है। इसका शरीर उससे भी क्षीण होता है। चोंच अधिक दुर्बल तथा पूँछ अधिक लम्बी होती है। उसमें ,बाहरी ओर के परों में श्वेत रङ्ग को पक्षी के भूमि पर ऊपर से उतरने के समय स्पष्ट देखा जा सकता है।

नर और मादा समान रङ्ग रूप के होते हैं। खुले मैदानों में भूमि पर शिथिल झुंड होते हैं।

भारत तुलिका का प्रसार सारे भारत में पाया जाता है। यह सारे भारत में सन्तानोत्पादन करती है। हिमालय में ६००० फुट की ऊँचाई तक अंडे देती है। आसाम की पहाड़ियों में साढ़े चार या पाँच हजार फीट के ऊपर अंडे नहीं देती। मई, जून, जुलाई अंडा देने का समय है। कहीं-कहीं मार्च से अक्टूबर तक अण्डा देने के उदाहरण हैं। वर्ष में दो या तीन बार अण्डे देती है। इसका घोंसला सदा भूमि पर ही बना होता है। घास, जड़ आदि से प्यालीनुमा घोंसला बना कर नर्म घास का अस्तर दिया होता है। घोंसले को घास, फूस, काँटे आदि से भली-भाँति छिपा कर रखती है। जगह अधिक खुली हो तो घोंसला बुर्जदार बनाती है। अगल-बगल लम्बी घास देकर ऊपरी सिरे पर मोड़ देती है। तीन चार अण्डे एक बार में देती है। उसका रङ्ग श्वेत तथा पीलापन या धूसरपन के पुट युक्त होता है। कभी-कभी लाल भूरे, लाल या हरे रङ्ग की भी पुट होती है।

भारत तुलिका सर्वत्र बारहमासी पक्षी है। यह बहुत प्रचलित भारतीय पक्षी है परन्तु बस्तियों में नहीं जाता। यह मैदानी भाग का पक्षी है। यह खेतों या परती भूमि में पाया जाता है। परन्तु बञ्जर जगहों में अधिक नहीं पाया जाता। फसल, हरियाली या आर्द्र भूमि को भी पसन्द करता है। यह पङ्ख फैला कर स्थिर रक्खे हुए रूप की (निष्कंप पङ्खीय) उड़ान उड़ता हुआ गायन करता है। नर पक्षी सन्तानोत्पादन काल में झाड़ियों या लम्बी घास पर बैठा देखा जाता है। परन्तु शीत ऋतु में वह सदा भूमि पर ही पाया जाता है।

पिंग तुलिका

स्था० नाम—चिल्लू (हि०)

आकार—पङ्ख—सवा तीन इञ्च से पौने चार इञ्च तक, पूँछ—ढाई इञ्च से तीन इञ्च तक, गुल्फ—एक इञ्च, चोंच—दो तिहाई इञ्च।

भांडीकों (अबाबीलों) की अपेक्षा तुलिका की पूँछ छोटी होती है तथा ऊपरी तल पर रेखाएँ होती हैं। ये पक्षी लगभग सारे संसार में पाये जाते हैं। इनकी जातियों के रङ्ग रूप बहुत कुछ परस्पर मिलते हैं। इनका वर्णन पढ़कर रङ्ग रूप का ठीक ज्ञान प्राप्त करना कठिन ही है। शिशु पक्षियों का अधोतल अधिक रेखित होता है, प्रतिवर्ष के वसन्तागमन पर पर झरने पर उनके धब्बों का आकार कम होता जाता है। कुछ जातियों में वह सर्वथा मिट जाता है। ग्रीष्म तथा शीत ऋतु के परों में विशेष अन्तर नहीं होता। ग्रीष्म के अन्त में काली रेखाएँ तथा धब्बे कुछ अधिक स्पष्ट हो गये होते हैं।

भारत तुलिका का वक्षस्थल रेखाओं या धब्बों युक्त होता है, परन्तु पिंग तुलिका का वक्षस्थल धब्बों या रेखाओं से शून्य होता है।

पिंग तुलिका का सन्तानोत्पादन क्षेत्र योरप में दक्षिणी स्वेडेन से लेकर भूमध्य तटीय देशों तक, उत्तर पश्चिमी अफ्रीका, एशिया माइनर तथा पश्चिमी साइबेरिया है। शीत ऋतु में प्रवास कर दक्षिण में भारत के अधिकांश भाग में फैल जाती है।

पिंग तुलिका मई से लेकर प्रारम्भ जुलाई तक अण्डे देती है। इसका घोंसला बड़ा भारी होता है। घास के ऊपर नर्म घास का अस्तर देकर घोंसला बना होता है। चार या पाँच अण्डे एक बार में देती है।

पिंग तुलिका खेतों या घनी घास के मैदान की अपेक्षा ऊजड़ मैदान ही अधिक पसन्द करती है किन्तु कभी-कभी हरे-भरे खेतों के मध्य भी अण्डे देती है।

आरक्तकण्ठ तुलिका

स्था० नाम—लाल गुल चिल्लू

आकार—पङ्ख—तीन इञ्च से साढ़े तीन इञ्च तक, पूँछ—सवा दो इञ्च से ढाई इञ्च तक, गुल्फ—एक इञ्च से कुछ कम, चोंच–आधा इञ्च।

आरक्तकण्ठ तुलिका की आँख के ऊपर चौड़ी भौं होती है। सिर के पार्श्व भाग, हनु, कण्ठ, तथा वक्षस्थल कत्थई होते हैं। शेष अधोतल हल्का पीला तथा गुलाबी रङ्ग के पुट युक्त होता है। पिछले वक्षस्थल पर काली रेखाएँ भी होती हैं। ऊपरी तल्ल काला होता है। आँखें भूरी, चोंच ऊपरी तल पर सींग सदृश भूरा तथा निचले तल पर पीलापन रङ्ग का होता है। पैर तथा पंजे लाल श्वेत पीले होते हैं।

आरक्तकण्ठ तुलिका का सन्तानोत्पादन क्षेत्र उत्तरी योरप तथा उत्तरी एशिया में कैमस्चटका तक है। शीत ऋतु में प्रवास कर लेने पर इसका प्रसार दक्षिण में उत्तरी अफ्रीका, गिलिगट, काश्मीर, सिक्किम तथा आसाम तक पाया जाता है। इससे भी पूर्व बर्मा, हिन्द चीन, दक्षिणी चीन तथा मलाया में इसे पाया जाता है।

यह चिड़िया जून जुलाई में अण्डे देती है। घोंसले अन्य तुलिकाओं की तरह बने होते हैं। सन्तानोत्पादन के लिए दलदलीय भूमि ढूँढ़ती जहाँ आर्द्रस्थल के वनस्पति अत्यधिक उगे हों। चार या छः अण्डे तक एक बार देती है।

आरक्त कण्ठ तुलिका का स्वभाव अन्य तुलिकाओं की भाँति होता है। प्रथम प्रवासी चिड़िया सितम्बर में भारत में पहुँच जाती है किन्तु अधिकांश अक्टूबर में आती तथा पुनः अप्रैल में वापस चली जाती है। वे दलदली या आर्द्र स्थलों में ही रहती है। तालाबों, झीलों के किनारे या हरियाली की ठंडक में रहती हैं।

———

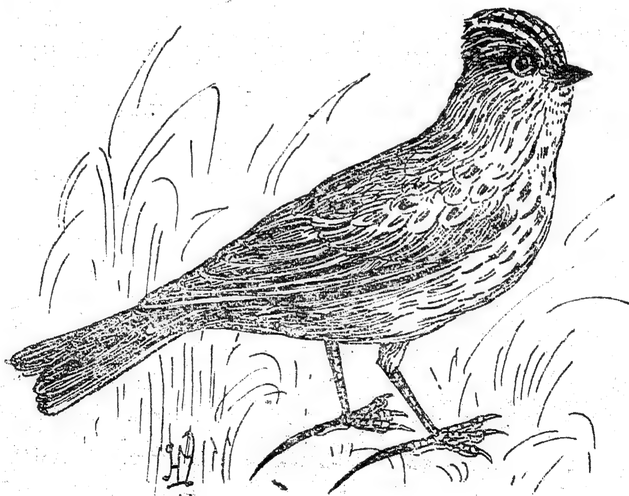
भारद्वाज वंश

पिंगोदर भारद्वाज

स्था० नाम—भुरुट

आकार—पूर्ण लम्बाई—आठ इञ्च, पङ्ख—चार इञ्च से पौने पाँच इञ्च तक, पूँछ—ढाई इञ्च से तीन इञ्च तक, गुल्फ—एक इञ्च, चोंच—आधा इञ्च।

भारद्वाज वंश नाम से अनेक प्रजातियों के पक्षियों का वर्ग प्रसिद्ध है। इनकी एक विशेषता यह है कि गुल्फ या मुख्य पैर का पिछला भाग



पिंगोदर भारद्वाज

आड़े रूप की अँगूठियोंमय या गाँठ से चिन्ह बनाए होता है। इनके नर और मादा समान से ही होते हैं। सिर पर प्रायः कलँगी होती है। पिछली पादांगुलि लम्बी तथा सीधी होती है। इसकी भारद्वाज नाम की एक प्रजाति भी होती है। उसके पङ्ख इतने छोटे होते हैं कि दुम के सिरे से बहुत पहले ही समाप्त हो जाते हैं। इसकी चोंच छोटी और दुर्बल होती है। नासारंध्र पर छोटे-छोटे पर आच्छादित होते हैं। गुल्फ लम्बा तथा पुष्ट होता है। शिशु पक्षियों में ऊपरी भाग श्वेत तथा काले रङ्ग की स्फुट पट्टियों युक्त होता है। इसकी दो जातियों में एक बड़ी तथा दूसरी छोटी होती है। पिंगल भारद्वाज बड़ी जाति का होता है।

पिंगल भारद्वाज के ऊपरी तल के परों में केन्द्रीय भाग गहरा भूरा तथा किनारी चौड़ी पीली होती है। किनारियों के अन्तिम भाग धूसर मिश्रित पीले होते हैं। पिछली गर्दन पर श्वेत तथा काले रङ्ग का बहुत धुँधला पट्टा बना होता है। पूँछ भूरी तथा पीली किनारी युक्त होती है। एक चौड़ी भौं पीली श्वेत होती है। कपोल तथा कर्णस्थल के पर पीले भूरे मिश्रित होते हैं। हनु के पार्श्व, कण्ठ, अगली गर्दन, वक्षस्थल तथा बगल में कालापन युक्त भूरे रङ्ग की रेखाएँ होती हैं। निम्न तल श्वेत रङ्ग पर पीले रङ्ग के पानी फेरे समान होता है। आँख गहरी भूरी, ऊपरी चोंच सींग सी भूरी तथा निचली चोच पीली, पैर तथा पंजे लाल भूरे या धूमिल पीले भूरे होते हैं।

पिंगल भारद्वाज का सन्तानोत्पादन क्षेत्र पश्चिमी साइबेरिया, तुर्किस्तान, त्यानशान, पामीर, गिलगिट, अफगानिस्तान तथा बिलोचिस्तान है। शीत ऋतु में प्रवास कर उत्तरी अफ्रीका, यूनान, मेसोपोटामिया, फिलस्तीन तथा पश्चिमी पाकिस्तान तक पहुँचता है। यह पक्षी पाकिस्तान के सीमान्त प्रदेश, पञ्जाब तक आता है। अफगानिस्तान में १५००० फुट की ऊँचाई पर ग्रीष्म ऋतु में पाया जाता है। भारत में कदाचित् पञ्जाब में आता हो। यह पक्षी पाश्चात्य जगत में गायन के

लिए अति प्रसिद्ध है परन्तु छोटे जाति का भारद्वाज हमारे देश में न तो गायन ही उतना सुन्दर करता है और न उतनी ऊँची उड़ान ही कर सकता है।

सामान्य रेखित भारद्वाज

स्था० नाम—भुरुट

आकार—पङ्ख—ढाई से पौन इञ्च तक, पूँछ—दो इञ्च, गुल्फ—एक इञ्च, चोंच—आधा इञ्च।

रेखित भारद्वाज या भुरुट पक्षी का आकार घरेलू गौरैया सा होता है। यह मादा गृह कुलिंग सरीखा पक्षी है। ऊपर के भूरे रङ्ग में गहरे रङ्ग की रेखाएँ होती हैं। अधोतल में भी धूमिल पीले रङ्ग की रेखाएँ होती हैं। भारत तुलिका से विभिन्न प्रदर्शित करने में इसकी छोटी पूँछ तथा नाटा आकार विशेष लक्षण हैं। नर और मादा समान रङ्ग रूप के होते हैं। खुले मैदानों तथा खेतों में जोड़े या झुण्ड रूप में यह पाया जाता है। अधोतल का अत्यधिक गहरा रङ्ग होना ही अन्य भारद्वाजों से इसकी विशेषता है।

रेखित भारद्वाज या छोटी जाति का भारद्वाज शीतोष्ण भाग के उत्तरी भारत, आसाम तथा बर्मा में पाया जाता है। दक्षिण में खानदेश तक पाया जाता है। उसके बाद इसके प्रसार की दक्षिणी सीमा हैदराबाद से लेकर मसलीपट्टम तक खिंची काल्पनिक रेखा है।

रेखित भारद्वाज उत्तरी भारत में मार्च से जुलाई तक अण्डे देता है। वर्ष में प्राय: दो बार सन्तानोत्पादन करता है। हिमालय में यह निश्चित रूप से बहुत ऊँचाई तक जाता है। कमायूँ तथा काश्मीर में ५,००० फुट की ऊँचाई तक अण्डा देने वाले भारद्वाज इसी जाति के होते हैं। इसका घोंसला घास तथा कुछ जड़ों को मिलाकर प्यालीनुमा बना होता है। उसमें पतली घास या बहुत पतली जड़ों का अस्तर दिया रहता है।

यह भूमि पर घास, खड़ी फसल या कुश आदि से छिपा रहता है। दो तीन या चार अण्डे तक एक बार में देता है। बड़ी जाति के भारद्वाज (पिंग) से इसके अण्डे छोटे ही नहीं होते, बल्कि धूमिल भी होते हैं। उनका छिल्का भी दुर्बल होता है। उनमें चमक नहीं होती।

पिंग भारद्वाज शीत वातावरण का पक्षी है। किन्तु रेखित भारद्वाज उष्ण वातावरण प्रिय है। उत्तरी भारत के उष्ण वायुमण्डल में वह अपना जीवन यापन करता है। रेखित भारद्वाज बंगाल बिहार और आसाम में भारी संख्या में पाया जाता है। झुण्ड भी बनाता है परन्तु प्रवास नहीं करता। अत्यन्त सूखे भागों में उष्णतम ऋतु में नहीं पाया जाता। ऐसे समय वह अधिक हरियाली के स्थानों में अवश्य चला जाता है।

भारद्वाज पक्षी अधिक सुन्दर न होने पर भी मधुर कण्ठ के लिए प्रसिद्ध है। गेहूँ के खेतों या चरागाहों के ऊपर नर पक्षी कुलेल या गायन में परस्पर सङ्घर्ष करते पाए जा सकते हैं। जब सन्तानोत्पादन ऋतु निकट आती है तो नर पक्षी अपनी ऊँची उड़ान तथा गायन अधिक करने लगता है। समय-समय पर या विशेषता प्रातः सन्ध्या किसी चट्टान या स्थल से सहसा यह उठ पड़ता है और लगभग सीधे ऊपर उड़ता तथा पङ्ख फटफटाता जाता है। पैर प्रायः नचाता सा रहता है। जैसे-जैसे ऊपर उठता जाता है, उसका कण्ठ भी मधुर शब्द की वर्षा करता जाता है। अपनी मधुर बोली प्रतिध्वनित करते-करते ही ऊपर उड़ता रहकर दृष्टि से इतनी दूर पहुँच जाता है कि साधारण दूरबीन भी नहीं देख पाते। उच्च आकाश में कुछ समय तक स्थिर सा रहकर पङ्ख कम्पित कर शरीर साधे पड़ा रहता है तथा दस मिनट तक उच्च ध्यान से गायन भी करता रहता है जो धरातल पर स्पष्ट श्रवणगोचर होता रहता है। फिर विश्राम का समय आता है। वह पङ्ख बन्द कर कुछ दूर नीचे तक पत्थर के ढोंके की तरह गिर आता है। फिर पङ्ख-फैला कर कम्पित कर लेता है तथा

पुनः पङ्ख बन्द कर नीचे गिरता है। ऐसे खेल करते वह भूमि पर आ धमकता है। जहाँ से उसने पहले उड़ना प्रारम्भ किया था, उसी स्थल के निकट फिर आ बैठता है।

सिंधु रेखिपृष्ठ कण्ट चूड़

स्था० नाम—चण्डूल

आकार—पूर्ण लम्बाई—साढ़े सात इञ्च से कुछ कम, पङ्ख—पौने चार से चार इञ्च तक, पूँछ—तीन इञ्च, गुल्फ—एक इञ्च से कुछ कम, चोंच—आधा इञ्च।

रेखिपृष्ठ कण्ट चूड़ गौरैया से थोड़ा बड़ा होता है। अन्य चण्डूलों (तिलक कण्टकों) से इसे विभिन्न ज्ञात करने में इसका बड़ा आकार, तथा प्रमुख और नोकीली शिखा विशेषता है। इसकी शिखा प्रायः खड़ी ही रहती है। इसके नर मादा समान रङ्ग रूपों के होते हैं। यह सूखे खुले मैदानों में अकेले या जोड़े रूप में पाया जाता है।

सिन्धु रेखिपृष्ठ कण्ट चूड़ या सिन्धी चण्डूल सिन्ध (पाकिस्तान) तथा साँभर तक राजपूताना में, दक्षिण में रायपुर तक, पूर्व में उत्तर प्रदेश तथा बिहार तक पाया जाता है।

सिन्धी कण्टचूड़ या शिखी चण्डूल बारहमासी पक्षी है तथा अपने प्रसार क्षेत्र में अप्रैल से जून तक अण्डे देता है। कभी मार्च में भी अण्डे दे देता है। कदाचित् जुलाई में भी दूसरी बार अण्डे देता है। भूमि के किसी गड्ढे में भारद्वाजों की भाँति घोंसले बनाता है। घोंसला बुर्जनुमा कभी नहीं होता, वह प्यालानुमा ही होता है। कभी तो वह भव्य रूप का बना होता है और कभी बहुत मामूली छिछला होता है। उसमें केवल बारीक घास प्रयुक्त होती है। उसमें थोड़ी ऊन, बाल या रुई का पेंदी में अस्तर अवश्य रहता है।

जहाँ वृक्षों की बहुलता न हो, उन खेतों या हरियाली के मैदानों में

यह पक्षी रहता है। यह कुछ उड़ान तथा गायन का अनुकरण करता पाया जाता है, परन्तु वह भारद्वाज की भव्य ऊँची उड़ान तथा श्रुतिप्रद गायन के आगे उपहास की बात ही कही जा सकती है। यह पिंजड़ों में पाल कर रक्खा भी जाता है।

मुम्बई तिलक कंटक

आकार—पंख—साढ़े तीन इंच, पूंछ—दो इंच, गुल्फ—पौन इंच, चोंच—आधा इंच।

मुम्बई तिलक कंटक तथा मलाबार तिलक कंटक तिलक कंटकों की अन्य जातियाँ है जो रेखिपृष्ठ कंट चूड़ के साथ भारत के अधिकांश में पाई जाती हैं। मुम्बई तथा मलाबार तिलक कंकट आकार में विशेष छोटे होते हैं।

मुम्बई तिलक कटक या बंबइया चंडूल का प्रसार क्षेत्र भारत का पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, कच्छ, राजपूताना, बम्बई प्रदेश, तथा दक्षिण में मैसूर और पूर्व में मद्रास तक है। यह जून में वर्षारंभ से लेकर मध्य अक्टूबर तक अंडे देता है किन्तु यह अधिकांश स्थलो में कभी-कभी अप्रैल मई में भी अंडे देता है। यह सूखे खुले मैदानों या यथेष्ट जलसिंचित खेतों में अपना घोंसला बनाता है। घास या झाड़ियों के नीचे किसी प्राकृतिक गड्ढे में छिपे रूप का घोंसला बनाता है। घास, मोटे रेशे आदि का मामूली छिछला घोंसला होता है जिसमें बारीक घासों, जड़ों आदि का अस्तर दिया रहता है। दो या तीन अंडे एक बार देता है। यह थोड़ी हरियाली के मरुस्थलों में भी रहता है। उड़ते हुए या झाड़ी पर बैठे रह कर भी गाता है। मीठी बोली के कारण यह पाला जाता है। यह भूमि पर शीघ्रता से दौड़ सकता है।

रक्तपुच्छ कुब्ज कुकराट

स्था० नाम—अगिया बैताल

अगिया बैताल या रक्तपुच्छ कुब्ज कुकराट भी भारद्वाज वंश का पक्षी है। इसकी प्रजाति भूमिशयम कहलाती है। भूमि में शयन करने वाले तो अन्य भी पक्षी होते है। परन्तु नाम पड़ गया है। इस पक्षी की चोंच सिर की अपेक्षा विशेष छोटी होती है। नासारंध्र परों से सर्वदा छिपा रहता है। शरीर का ऊपरीतल गहरा भूरा होता है। शीर्ष पर मध्यवर्ती गहरा रंग तथा अगल बगल धुंधला सा रंग स्पष्ट जान पड़ता है। पूंछ गहरी पीली तथा कालामिश्रित भूरे रंग की चौड़ी अंतिम सिरों युक्त होती है। निचला तल गहरा पीला होता है। कंठ तथा अग्र वक्ष स्थल का रंग धूमिल तथा काली रेखाओं युक्त होता है।

अगिया बैताल का प्रसार क्षेत्र पश्चिम में कच्छ की खाड़ी से लेकर दिल्ली तक खिची काल्पनिक रेखा तक तथा पूर्व में दीनापुर तक, उत्तर में गंगा तक और दक्षिण में मैसूर तथा त्रावणकोर तक है।

अगिया बैताल अधिकांशतः मार्च, अप्रैल तथा प्रारंभ मई में अण्डे देता है। इस का घोंसला बनाने का स्वाभाविक स्थान किसी जोते हुए खेत में मिट्टी के ढेले के नीचे किसी प्राकृतिक या पक्षी द्वारा बनाये गड्ढे में होता है। किन्तु नदी के किनारों में भी घोंसला बनाने के उदाहरण पाए जाते हैं। कभी-कभी चट्टान, पथरीले ढोंके, झाड़ी या छाल की जड़ों की जड़ में भी इसके घोंसले पाए जाते हैं। कहीं गड्ढा न बना सकने पर पथरीले ढोंकों को जुटाकर यह घोंसले की बाढ़ या दीवाल सी बना लेता है। उसमें घास-पात के ऊपर ऊन आदि का अस्तर लगा देता है। तीन चार या केवल दो ही अण्डे एक बार देता है।

अगिया बैताल यथेष्ट सूखे मैदानों में रहता है। जोते हुए सूखे खेतों में अधिक रहता है। फसल कटने के बाद भी खेतों को आश्रय स्थल

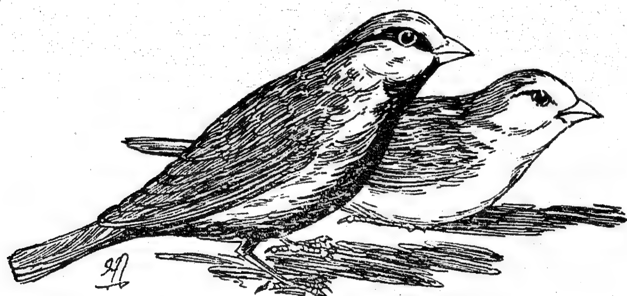
बनाता है। घास के छोटे बीज या अनाज से दाने भी खाता है। ज्वार के ऊँचे पौधों पर भी बैठकर दाना चुगते पाया जाता है। यह मधुर गायन करता है। थोड़ी ऊँचाई तक उड़ान कर भी गायन करता है।

धूसर कुब्ज कूकराट

स्था० नाम—डियोरा डुरी, डमक चुरी, जोठौली (हि०), चट भरई, धुल चटा (बंग०), गोटौली (बिहार)

आकार—पूर्ण लम्बाई—साढ़े पाँच इञ्च, पङ्ख—तीन इञ्च, पूँछ—पौने दो इञ्च, गुल्फ—दो तिहाई इञ्च, चोंच—एक सेंटीमीटर या $\frac{2}{5}$ इञ्च।

धूसर कुब्ज कूकराट (डमक चुरी) पक्षी पाटल चटक की भाँति नाटे आकार का होता है। यह खुले मैदानों में भूमि पर जोड़े या झुण्ड रूप में पाया जाता है। नर पक्षी का ऊपरीतल बलुहा, अधोतल काला



धूसर कुब्ज कूकराट

शीर्ष स्लेटी, तथा कपोल श्वेत सा होता है। मादा का रङ्ग मादा गौरैया की भाँति सर्वाङ्ग बलुहा होता है।

धूसर कुब्ज कूकराट का प्रसार क्षेत्र समग्र भारत है। पश्चिमी पाकिस्तान के पञ्जाब में नहीं होता। भारत के सीमा में सर्वत्र पाया जाता

है। यह वर्ष में कदाचित् दो बार अंडे देता है। पहली बार फरवरी से लेकर प्रारम्भ मई तक तथा दूसरी बार अगस्त से अक्टूबर तक किन्तु साल भर भी अण्डे पाए जाते हैं। घोंसले की चहारदीवारी या पेंदा भी पथरीले टुकड़ों, ठीकरों, ढेलों आदि को जुटा कर बनाता है। एक छोटी प्याली के आकार का सुन्दर घोंसला बनाता है। कभी-कभी खुले मैदान में किसी भी आवरण के बिना ही घोंसले बने होते हैं। दो या तीन अण्डे देता है। अंडे लम्बोतरे तथा पीले भूरे रङ्ग के होते हैं।

यह किसी भी प्रशस्त भूमि में पाया जाता है जो अधिक नम न हो। इसको ऊँचे बलुहे स्थल, खेत या परती भूमि एक समान ही प्रिय ज्ञात होती है। यह सर्वत्र बारहमासी होता है। वर्षा में नीची भूमि से हट कर कुछ सूखी भूमि में स्थानान्तरित हो सकता है। भूमि पर तो यह बड़ा ही क्रियाशील होता है। परन्तु उड़ने में दुर्बल होता है। सन्तानोत्पादन काल में इसे उड़ते तथा गाते अवश्य पाया जाता है। यह घास के बीज या उड़ते पतिंगे खाता है।

—:०:—

सितनयनी वंश

सितनयनी

स्था० नाम—दावतिशा गोफुपी (कच्चरी)

आकार—पङ्ख—सवा दो इञ्च, चोंच—एक सेंटीमीटर या $\frac{२}{५}$ इञ्च।
काम रूप सितनयनी गौरैया से छोटे आकार की होती है।



सितनयनी

लाल मुनिया के बराबर इसका आकार होता है। इसकी पूँछ चौकोर होती है। शरीर का रङ्ग हरापन युक्त पीला या चमकीला पीला होता है। आँख के चारों ओर एक स्पष्ट लाल वृत्त होता है। इसकी पतली, नोकीली चोंच थोड़ी सी मुड़ी होती है। नर और मादा एक रङ्ग के होते हैं। बाग-बगीचों, उपवनों में झुण्ड में रहती है। इसके उदर के मध्यवर्ती भाग में पीली रेखाएँ स्पष्ट पहचान है।

कामरूप सितनयनी का प्रसार क्षेत्र ब्रह्मपुत्र के दक्षिण का आसाम, मनीपुर, लुशाई, टिपरा, चटगाँव, चिन पहाड़ी आदि हैं। भारतीय



आसाम सितनयनी

सितनयनी का प्रसार क्षेत्र बङ्गाल, उड़ीसा, पूर्वी मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत, तथा मैसूर से दक्षिण में पूर्व और पश्चिमवर्ती सभी पर्वतीय भागों

में है। तीसरी उपजाति उत्तरी सितनयनी होती है। उसका प्रसार क्षेत्र पश्चिमी मध्यप्रदेश, राजपूताना, पञ्जाब, उत्तरप्रदेश तथा हिमालय में पूर्वी आसाम तक है। निकोबार द्वीप में एक अन्य उपजाति पाई जाती है।

सितनयनी रेगिस्तान के अतिरिक्त अन्य स्थलों में पाई जाती है। यह अधिक हरियाली के मैदान में पाई जाती है। आर्द्र जङ्गलों में भी पाई जाती है। सन्तानोत्पादन ऋतु के अतिरिक्त समय में पाँच से लेकर बीस तक के झुण्ड में रहती है। १०० चिड़ियों के भी झुण्ड कभी-कभी देखे जाते हैं। यह वृक्षों पर ही रहने वाली चिड़िया है। पत्तों में कीट पतङ्ग आदि को ढूँढ़कर अहार बनाती है। कली तथा कोंपल में कीड़ों को विद्यमान होने का पता लगाने के लिए प्रायः सिर नीचे कर लटक जाया करती है। यह फुदकते समय कुछ शब्द करती रहती है। सन्तानोत्पादन काल में झुण्ड जोड़ों रूप में बट जाता है। उस समय नर में गाने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। मन्द रूप में ही प्रारम्भ कर क्रमशः स्वर उच्च करता जाता है। पुनः मन्द कर चुप हो जाता है। इसके घोंसले पीलक पक्षी की तरह रेशों द्वारा छोटी प्याली रूप में सुन्दर बने होते हैं।

—:०:—

शींजिरिका वंश

अग्निपुच्छ पीतकटि शींजिरिका

आकार—पङ्ख—२ इञ्च से कुछ अधिक, पूँछ—४ या ४¾ इञ्च, गुल्फ—आधा इञ्च से कुछ अधिक, चोंच—पौन इञ्च।

आकार—(नर) भाल, शीर्ष, हनु के पार्श्व भाग तथा कण्ठ चमकीला नीला, नेत्र से लेकर शीर्ष के पार्श्व भाग, पिछला सिर, पीठ, गर्दन के पिछले तथा पार्श्व भाग, ऊपरी पुच्छ आच्छादक तथा स्कन्ध लाल तथा कटि प्रदेश चमकीला पीला होता है। मध्यवर्ती पुच्छीय पतत्र (पर) लाल रंग के तथा बाह्य पतत्र लाल किनारी युक्त भूरे रंग के होते हैं। पङ्ख भूरे रंग के होते हैं जिन पर जैतूनी पीले रग की किनारी होती है। कण्ठ तथा हनु नीलोरुण होते हैं। वक्षस्थल पीला होता है किन्तु उसके मध्य भाग में रक्तवर्ण होता है। शेष अधोतल मन्द हरापन मिश्रित पीला होता है।

मादा में पूँछ हरी होती है, केवल लाल रंग की पुट उस पर होती हैं। पीठ भी हरी होती है।

शींजिरिका प्रजाति (फूलचुही) की सत्रह जातियाँ भारत में पाई जाती है। इनमें अनेक जातियों में नर पक्षी का मध्यवर्ती पुच्छ पतत्र लम्बोतरा होता है तथा कटि प्रदेश पीला होता है। अग्निपुच्छ पीत कटि शिजिरिका ऐसा ही पक्षी है। इसका प्रसार क्षेत्र नेपाल, सिक्किम, आसाम, कच्चर, सिलहट, मनीपुर, टिपरा तथा पश्चिम में गढ़वाल तथा कमायूँ तक है। यह २००० फुट से लेकर १२००० फुट की ऊँचाई तक विभिन्न ऋतुओं में पाया जाता है। बसन्त ऋतु में यह दारजिलिंग में पाया

जाता है किन्तु उस समय इसकी मध्यवर्ती पूँछ उतनी लम्बोतरी नहीं बनी होती।

शींजिरिका बहुत ऊँचाई पर रहने वाला पक्षी है। प्रायः २००० फुट ऊँचाई पर सन्तानोत्पादन करता है। यह जंगल का पक्षी है। यह लज्जालु तथा बस्ती से दूर रहने वाला पक्षी है किन्तु शीत ऋतु में वाटिकाओं में भी आ जाता है।

कामरूप सुवर्ण पुष्प

आकार—पङ्ख—सवा दो इञ्च, पूँछ—पौने तीन इञ्च से साढ़े तीन इञ्च, तक, गुल्फ—दो-तिहाई इञ्च, चोंच—दो-तिहाई इञ्च।

नर कामरूप सुवर्ण पुष्प का सिर, भाल, ठुड्डी, कण्ठ, कान के पीछे एक धब्बा, तथा वक्षस्थल के निकट एक धब्बा नीले रंग का होता है। आँख के सामने का भाग, कपोल, सिर का बगल, गर्दन, पीठ तथा पङ्ख के मूल भाग का रंग लाल होता है। कटि प्रदेश चटकीला पीला होता है। पूँछ के ऊपरी आवरण के पर तथा दो-तिहाई पूँछ का रंग चमकीला नीला होता है। पूँछ का अन्तिम भाग काला तथा नीलारुण की पुट युक्त होता है। अधोतल चमकीला पीला, वक्षस्थल पर लाल रेखा युक्त होता है। आँख लाल भूरी या लाल होती है। चोंच काली, पैर तथा पंजे गहरे भूरे होते हैं।

मादा का ऊपरी तल धूसर हरा, सिर गहरे रंग का, मध्यवर्ती भाग भूरे रङ्ग का किन्तु परों से ढका हुआ होता है। कटि प्रदेश हल्का गन्धकी तथा कपोल, कान, ठुड्डी, कण्ठ, अगला वक्षस्थल धूसर रङ्ग मिश्रित हल्का हरा होता है। ऊपर अधिक पीला होता है। पूँछ भूरी तथा बैंजनी हरे रङ्ग की किनारी युक्त होती है।

कामरूप सुवर्ण पुष्प का प्रसार हिमालय में सतलज की घाटी से,

पूर्वी आसाम तक, नागा पहाड़ी, ब्रह्मपुत्र के दक्षिण ६००० तक ऊँचे स्थानों में है।

इसके घोंसले दृढ़ तथा घासपात के बने होते हैं जो झाड़ियों में पतली डालों से फँसाए होते हैं। धरती से कुछ फुट की ऊँचाई पर वे



कामरूप सुवर्णपुष्प

बने होते हैं। वे सेवार, घास या मकड़ी के जाले द्वारा आबद्ध होते हैं। अण्डों का रङ्ग धूमिल होता है। श्वेत पृष्ठ तल पर हल्के लाल भूरे रङ्ग के धब्बे होते हैं।

कामरूप सुवर्णपुष्प हिमालय में १२ या १३ हजार फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है। ५००० फुट से ऊँची जगहों पर ही होती है। शीत ऋतु में इस ऊँचाई से नीचे उतर आती है। यह उड़ने में तीव्र होती है। किन्तु लम्बी उड़ान नहीं उड़ती। १०० गज तक उड़कर ही थक सी जाती है। यह अधिक हरियाली के स्थानों में ही रहती है। परन्तु सन्तानोत्पादन ऋतु के अतिरिक्त खुले स्थानों में भी आ जाती है।

भारत नीलारुण शींजिरिका

स्था० नाम—शकरखोरा (हि०), जुग्गी जुगी (भागलपुर), टुनटुनी (बं०)

आकार—पङ्ख—सवा दो इञ्च, पूँछ—डेढ़ इञ्च, गुल्फ—दो-तिहाई इञ्च, चोंच—पौन इञ्च।

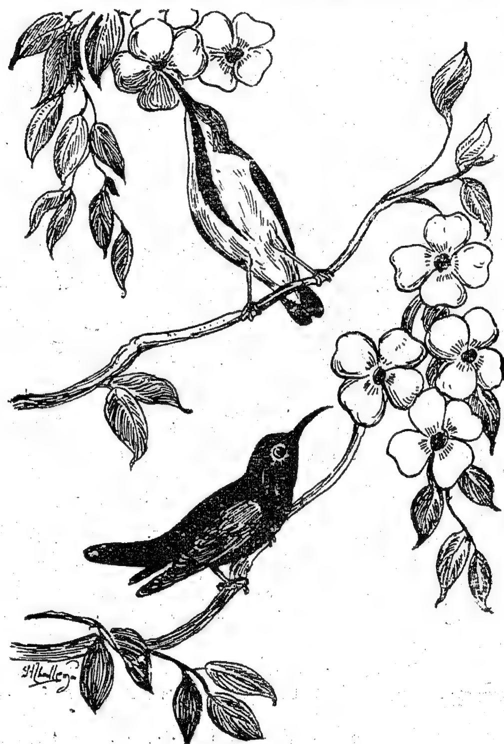
नीलारुण शींजिरिका (बैंजनी शकरखोरा) आकार में बहुत ही छोटा होता है। गौरैया से भी छोटा होता है। सितनयनी का आकार इसके बराबर ही होता है। सन्तानोत्पादन ऋतु के अतिरिक्त नर भी मादा के रङ्ग का होता है, उसका ऊपरी तल भूरा या हरा मिश्रित भूरा होता है। निम्न तल धूमिल पीला होता है। पंखों का रङ्ग गहरा होता है तथा वक्षस्थल के मध्य एक काली खड़ी रेखा होती है। थोड़ी हरियाली के मैदान में इस पक्षी के जोड़े पाए जाते हैं।

शींजिरिका या शकरखोरा वंश के पक्षी अपनी कुछ विशेषताओं के लिए विशेष प्रसिद्ध है। इस वंश के पक्षियों के दोनों चंचुओं के किनारे अगले आधे या तिहाई भाग की चोंच में बारीक दाँतेदार होते हैं। ऐसे रूप की चोंच वाले अन्य पक्षी विरले ही होते हैं। इनकी जीभ लम्बी गोली नली सी होती है। चोंच विशेष लम्बी तथा लगभग गोलाकार होती है। गुल्फ पतले तथा लम्बे होते हैं। कुछ में पैर छोटे और दृढ़ होते हैं। उनमें अँगूठी या गाँठ से पोर बने होते हैं। साल में एक बार पूर्णतया तथा दूसरी बार आंशिक रूप में पर गिरा दिया करती है। शिशु का रङ्ग-रूप मादा समान होता है। नर मादा कभी समान और कभी विभिन्न रंग के होते हैं।

कामरूप सुवर्ण पुष्प पक्षी की जातियों या प्रजाति में नर पक्षी में पूँछ का मध्यवर्ती पतत्र (पर) लम्बा होता है, कटि प्रदेश पीला

होता है तथा मादा का अधोतल हरा होता है। यह प्रजाति सुवर्ण पुष्प कहलाती है।

भारत नीलारुण शींजिरिका एक दूसरी प्रजाति की है जिसे शींजिरिका प्रजाति कहते हैं किन्तु उसकी यह विशेषता है कि नर और



नीलारुण शींजिरिका

मादा दोनों की पूँछ छोटी तथा गोल होती है। मादा का अधोतल पीला होता है।

इन दोनों प्रजातियों में निचला चंचु स्पष्टतया नीचे की ओर मुड़ा होता है। परन्तु एक तीसरी प्रजाति रेखोदर कहलाती है जिसकी निचली चोंच लगभग सीधी ही होती है।

भारत नीलारुण शींजिरिका को भारत भर में फैला पाया जाता है। यह बारहमासी चिड़िया है। थोड़ा बहुत स्थानीय रूप से स्थान-परिवर्तन करती है।

नीलारुण शींजिरिका जनवरी से मई तक अण्डे देती है किन्तु स्थान-स्थान पर समय बदला भी होता है। सागर तथा झाँसी में मई से अगस्त तक अंडे देती है। कलकत्ता के निकट इनको बहुसंख्यक पाया जाता है। वहाँ वर्ष के सभी मासों में इसके अंडे मिलते हैं। किन्तु वर्षा-रंभ के पूर्व या वर्षा ऋतु के पश्चात् अण्डा देने की वृत्ति निश्चित पाई जाती है। नीलगिरि में ८००० फुट की ऊँचाई तक अण्डे देती है। मार्च से जून तक वहाँ अण्डा देने का समय है। हिमालय में ४००० फुट की ऊँचाई तक अण्डे देती है। वहाँ मई जून में अण्डे देती है। इसके घोंसले चिथड़े, पर, घास-पात आदि किसी भी वस्तु के बने हो सकते हैं। उसमें नर्म पदार्थों का अस्तर दिया रहता है। धरती से ६ फुट ऊँचे स्थानों में प्रायः इसके घोंसले पाए जाते हैं किन्तु वे कहीं भी बन सकते हैं। यह घर के बरामदे, वाटिकाओं आदि में घोंसले बना लेती है। दो तीन अण्डे एक बार देती है। अधिकांश पक्षी वर्ष में दो बार अण्डे देते हैं। कुछ तीन बार भी अण्डे देते हैं।

यह छोटा पक्षी उद्यान की शोभा है। जहाँ भी यह विद्यमान होता है, अपने स्वर से वायुमंडल गुञ्जित रखता है। यह बड़ा चपल तथा उद्यमी पक्षी है। सदा क्रियाशील रहता है। कभी फूल की किसी डाल के निकट चहकता, कभी किसी कली में झाँकने के लिए उल्टा लटकता और कभी किसी ओर कोई पतिंगा देख उसकी ओर झपटता दिखाई पड़ सकता है। फिर कहीं पङ्ख भनभनाते हुए किसी फूल पर मँडराता उसके

मधु-पान की योजना करता रहता है। यह इतने वेग से अपने पङ्ख कम्पित करता है कि केवल उसकी धुँधली झलक सी ही मिल पाती है। बीच-बीच में दुम ही दिखलाई पड़ती रहती है। तनिक देर ऐसे रूप में उड़कर ही किसी ओर उड़ भागता है। थोड़ी देर में फिर उस फूल के निकट मधु की खोज में आ धमकता है। यह अधिकांश स्थलों में बारहमासी पक्षी है, परन्तु ऊँची पर्वतमालाओं से शीत ऋतु में नीचे उतर आता है।

सिंहल शींजिरिका

स्था० नाम—शकरखोरा (हि०), मनचुंगी (वंग)

आकार—पङ्ख—दो इंच, पूँछ—डेढ़ इंच, गुल्फ—दो-तिहाई इंच, चोंच—दो-तिहाई इंच।

सिंहल शींजिरिका का आकार नीलारुण शींजिरिका के बराबर ही होता है। इसके सिर, ऊपरी तल तथा वक्षस्थल का रंग अधिकांशतः धात्विक हरित, नीलारुण तथा गहरा लाल होता है। कटि प्रदेश चमकीला आसमानी नीलारुण, अधोतल श्वेत होता है। प्रत्येक ऋतु में समान रंग होता है। मादा का रंग मादा नीलारुण शींजिरिका समान ही होता है किन्तु ठुड्डी और कंठ खाकीपन मिश्रित श्वेत होता है। शेष अधोतल चमकीला पीला होता है।

सिंहल शींजिरिका का प्रसार सिंहल (सीलोन) के अतिरिक्त भारत में उत्तर में बम्बई, सारा मध्य प्रदेश से लेकर पूर्व में छोटा नागपुर तथा बर्दवान तक पाया जाता है। यह बिहार, आसाम आदि में नहीं मिलता।

सिंहल शींजिरिका या नीलारुण कटि शींजिरिका अपने सारे प्रसार क्षेत्र में अंडे देती है। गर्मी के दिनों में कम अंडे दिखाई पड़ सकते हैं, अन्यथा साल भर अंडे देती है। इसका घोसला नीलारुण शींजिरिका सरीखा ही होता है। यह प्रायः मकड़ी के जालों के मध्य बना होता है।

जिससे यह ज्ञात होता है कि कोई वस्तु आँधी में उड़कर वहाँ आ फँसी है। यह कुछ ऊँचाई पर ही घोंसले बनाता है। १०, २० या ३० फुट ऊँचाई तक घोंसले पाये जाते हैं। दो या तीन अंडे एक बार देती है।

यह जंगलों या खेती, वाटिकाओं आदि में रहती हैं। शाल के पतले जंगल में भी घोंसला बनाती है। घरों, बरामदों में भी घोसला बनाने के उदाहरण मिलते हैं किन्तु नीलारुण शींजिरिका समान घरों को पसन्द नहीं करती। यह मैदानी चिड़िया है। परन्तु ढाई तीन हजार फुट ऊँचे पहाड़ों पर भी पाई जाती है।

—: ० :—

पुष्पान्वेषी वंश

सिक्किम पीतपायु पुष्पप्रिय

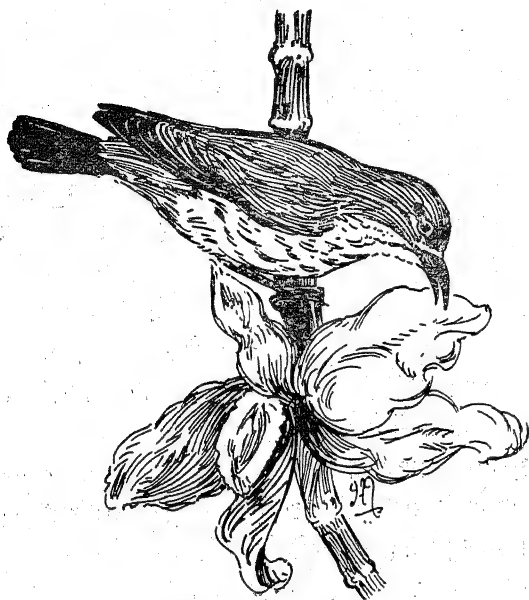
आकार—पङ्ख—दो इञ्च से ढाई इंच तक, पूँछ—एक इञ्च से सवा इञ्च तक, गुल्फ—आधा इञ्च, चोंच—एक-तिहाई इञ्च।

पुष्पप्रिय पक्षी शींजिरिका वंश के पक्षियों से भिन्न होते हैं। इनकी दोनों चोंचों में अन्तिम तिहाई भाग बारीकी से दाँतेदार होते हैं। चोंच का आकार छोटा और त्रिकोण होता है। नासिका खुली होती है किन्तु उस पर एक पतली झिल्ली होती है। निचले हनु में निकले दाढ़ीनुमा बाल (कूर्च) छोटे होते हैं। वर्ष में केवल एक बार पर झाड़ते हैं। नर और मादा का रङ्ग विशेष विभिन्न होता है। किन्तु कुछ में समान भी होता है।

वंग पुष्पप्रिय की तरह सिक्किम पीतपायु पुष्पप्रिय भी दुबले चंचु का होता है किन्तु इसका अधोतल रेखाओं युक्त होता है। वंग पुष्प प्रिय का अधोतल रेखाओं युक्त नहीं होता।

इसका सारा ऊपरी तल हरा मिश्रित पीला तथा कटि प्रवेश पर कुछ चमकीला होता है। पूँछ काली होती है जिसमें हरा मिश्रित पीले रङ्ग की किनारी होती है। प्राथमिक पङ्ख काले तथा बहुत पतली उज्ज्वल किनारी युक्त होते हैं। हरे मिश्रित काले रङ्ग की चौड़ी पट्टी मूँछों की तरह होती है। हनु, कपोल, तथा कंठ का रङ्ग श्वेत होता है। शेष अधोतल पीला-पन युक्त श्वेत होता है। उसमें प्रमुख रूप से हरी या काली रेखाएँ होती हैं। पूँछ के अधोभाग के आच्छादक पर (पतत्र) नारंगी होते हैं। आँखें नारंगी या लाल, ऊपरी चोंच, पैर, पञ्जे आदि काले होते हैं।

सिक्किम पीतपायु पुष्पप्रिय का प्रसार क्षेत्र पूर्वी नेपाल सिक्किम से



सिक्किम पीतपायु पुष्पप्रिय

लेकर पूर्वी और दक्षिणी आसाम तक है। मनीपुर, लुशाई की पहाड़ियों में पाया जाता है।

यह पहाड़ी पक्षी है। मैदानी भागों में नहीं रहता। शीत ऋतु में भी पहाड़ी भाग से नीचे नहीं उतरता। नागा पहाड़ियों में ८००० फुट की ऊँचाई तक रहता है। आसाम में मई जून, जुलाई में यह अण्डे देता है। इनके घोसले बहुत अधिक ऊँचाई पर नहीं होते।

वंग पुष्पप्रिय

आकार—पङ्ख—दो इञ्च, पूँछ—एक इञ्च से, गुल्फ—आधा इञ्च, चोंच—एक-तिहाई इञ्च से कुछ अधिक।

स्थूल चंचु पुष्पप्रिय का आकार शींजिरिका या शकरखोरा पक्षियों से छोटा होता है। यह सबसे छोटी भारतीय चिड़िया है। इसका ऊपरी तल धूमिल हरामिश्रित भूरा तथा अधोतल धूसर मिश्रित श्वेत होता है। इसका रङ्ग रूप मादा शींजिरिका सा होता है। इसकी चोंच छोटी, पतली थोड़ी-सी मुड़ी और रक्त वर्ण की होती है। आम के बागों में एकाकी रहती है।

वंग पुष्पप्रिय का प्रसार क्षेत्र उत्तर भारत में देहरादून तथा धर्मशाला से लेकर आसाम तक पाया जाता है। बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, पञ्जाब आदि को लेकर बम्बई प्रदेश में पलनी पहाड़ी तक तथा मैसूर और मध्य भारत में है।

वंग पुष्पप्रिय बारहमासी पक्षी है। फरवरी से जून तक अण्डे देता है। वर्ष में प्रायः दो बार अण्डे देता है। यह जंगल का पक्षी नहीं कहा जा सकता। यह खुले मैदानों, खेतों में गाँव-नगर के आस-पास रहता है। कभी-कभी घने जङ्गलों में भी अण्डे देता है। कन्नड़ (बम्बई) में घने वृक्षों युक्त घाटियों में यह पाया जाता है। आम के बागों में रहना इसे प्रिय है। यह दस फुट की ऊँचाई पर या कभी चालीस फुट ऊँचाई की अत्यन्त पतल टहनी पर अपना घोंसला बनाता है। यह सब जगह छिपा कर ही बना होता है। दो या तीन अंडे एक बार देता है।

स्थूलचंचु पुष्पप्रिय

आकार—पङ्ख—ढाई इञ्च, पूँछ—सवा इञ्च, गुल्फ—आधा इञ्च, चोंच—चौथाई इञ्च।

स्थूलचंचु पुष्यप्रिय पुष्यप्रिय प्रजाति का ही पक्षी है। रङ्ग-रूप

में वंग पुष्पप्रिय सा ही होता है। इसकी चोंच चटक पक्षी के समान स्थूल होती है। उसका रङ्ग नीलापन युक्त सींग के रङ्ग का होंता है। उसका अधोतल धूमिल रङ्ग की रेखाओं युक्त होता है।

स्थूलचंचु पुष्पप्रिय का प्रसार सारे भारत में है। हिमाल के अञ्चल से लेकर कन्या कुमारी तक प्रायः पाया जाता है। आसाम में नहीं पाया जाता।

यह सारे मैदानी भागों से लेकर ६००० फुट की ऊँचाई तक अंडे देता है। कभी-कभी ७००० फुट की ऊँचाई तक अंडे देता है। अंडा देने का समय मैदानी भाग में फरवरी से अप्रैल तक तथा पहाड़ों में अप्रैल से जून तक है। इसका घोंसला विचित्र ही होता है। उसे पहचानने में भूल नहीं हो सकती। घोंसले को एक छोटा थैला कह सकते हैं जो ऊपरी सिरे पर उतना ही चौड़ा होता है जितना पेंदे में। ऊपर के सिरे पर एक इञ्च व्यास का द्वार होता है। घोंसले का आकार प्रायः तीन इंच लम्बा तथा दो इञ्च चौड़ा होता है। इससे बहुत परिवर्तित आकार नहीं पाया जाता। कोंपलों तथा कलियों की नर्म पंखुड़ियों से यह बना होता है। उनके साथ मकड़ी के जाले मिला दिये गये होते हैं। इस प्रकार सारा घोंसला लाल भूरी फेल्ट टोपी-सा यन जाता है। ऊपर कुछ पतला तथा नीचे आधा इञ्च मोटा होता है। भीतर कोई अस्तर नहीं होता, परन्तु बाहर कुछ वस्तुएँ जुटी होती हैं। यह घोंसला इतना दृढ़ होता है कि इसके बनने के वर्षों बाद उसे लुढ़का कर पैर से रौंद देने पर भी फिर उसमें फूँक मारी जाय तो वह अपनी पूर्व आकृति में आ जाता है। ये घोंसले पाँच से लेकर पच्चीस फुट की ऊँचाई तक पेड़ों या झाड़ियों से लटके रहते हैं।

यह पक्षी बारहमासी है। हरियाली रहने तक यह खेतों या मैदानों में रहता है। वाटिकाओं में भी पाया जाता है। यह जङ्गलों में भी किनारे के भागों में ही पाया जा सकता है। यह बीज, फूलों के मधु तथा कीटों का आहार करता है।

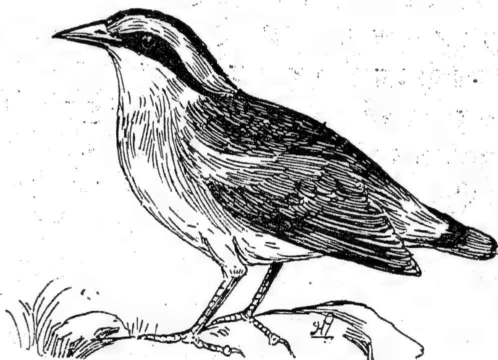
पद्मपुष्प वंश

भारत पद्मपुष्प

स्था० नाम—नौरङ्ग (हि०), शुमचा (वंग०)

आकार—पङ्ख—चार या सवा चार इञ्च, पूँछ—डेढ़ या पौने दो इञ्च, गुल्फ–डेढ़ इञ्च, चोंच—पौन इञ्च से कुछ अधिक।

भारत पद्मपुष्प बहुत अधिक रङ्गों युक्त शरीर का पक्षी है। यह भूमि पर घासों में अकेला पाया जाता है। इसकी उड़ान दुर्बल तथा



भारत पद्मपुष्प

धीमी होती है। उड़ान के समय उसके फैले पङ्ख में सिरे के निकट एक श्वेत धब्बा दिखाई पड़ जाता है।

भारत पद्मपुष्प का प्रसार क्षेत्र सारे भारत में है। दक्षिण भारत में यह कम संख्या में ही पाया जाता है। मध्य भारत के अधिकांश भाग,

दक्षिणी आसाम तथा बिहार के कुछ भाग में यह बहुत अधिक पाया जाता है। इसका घोंसला एक फुट लम्बा, फुटबाल सरीखा होता है। उसकी ऊँचाई नौ इञ्च होती है। घास, पत्तियों, आदि से बना होता है जिसमें घास या बाँस की पत्तियों का अस्तर रहता है। भूमि पर भी कभी-कभी घोंसले बनाता है। झाड़ियों या छोटे वृक्षों या नई गाँछियों के प्रथम बड़े स्कन्ध में उसके घोंसले प्रायः बनते हैं। चार से छः अंडे तक एक बार देता है। अण्डे बिल्कुल गोल से होते हैं।

भारत पद्मपुष्प बारहमासी पक्षी है। थोड़ा स्थानान्तर कर सकता है। पहाड़ों में २००० फुट की ऊँचाई तक कदाचित् केवल अण्डे देने जाता है। घने जङ्गलों में यह नहीं पाया जाता। बाँस, शाल, बलूत आदि के वृक्षों पर रहता है। यह भूमि पर ही चारा चुगता है। केवल रात को वृक्षों पर बसेरा लेता है।

महा पद्मपुष्प

आकार—पङ्ख—साढ़े पाँच से छः इञ्च तक, पूँछ—ढाई या पौने तीन इञ्च, गुल्फ—दो या सवा दो इञ्च, चोंच—डेढ़ इञ्च।

भारत पद्मपुष्प से महा पद्मपुष्प पक्षी की विशेषता यह होती है कि भारत पद्मपुष्प के शरीर का अधोतल चमकीले गहरे लाल रङ्ग से चिन्हित होता है। वक्षस्थल तथा उदर धूमिल पीले या लाल पीले होते हैं पङ्ख के निचले आच्छादक परों में एक बड़ा श्वेत धब्बा होता है। परन्तु महा पद्मपुष्प में शरीर के अधोतल का रङ्ग सादा धूमिल पीला होता है। उसकी पूँछ नीली होती है। इन दोनों से विभिन्न नील पद्मपुष्प का अधोतल आड़ी पट्टियों युक्त होता है तथा पश्चशीर्ष लाल, तथा शीर्ष पर एक आँख के ऊपर से एक काली पट्टी जाती है।

नर महा पद्मपुष्प का भाल, पिछला शीर्ष, शीर्ष के पार्श्व भाग, आँखों के सामने का भाग, आँखों के पर, सिर तथा गर्दन के पर

धूमिल धूसर भूरे होते हैं। पीठ, पङ्खों के आच्छादक पर, कटि, ऊपरी पुच्छ आच्छादक पर, तथा पूँछ का रङ्ग चमकीला नीला होता है। काली गर्दन के पास रंग चमकीला होता है। एक चौड़ी शीर्ष पर की पट्टी मुख से पीछे पिछले सिर और पिछली गर्दन पर जाकर चौड़ी हो गई होती है। एक दूसरी काली पट्टी भी उसमें आ मिलती है जो आँखों की भौंहों के नीचे से पीछे आई होती है। आँखें भूरी, चोंच काली, मुख का भीतरी भाग श्वेत, पैर तथा पञ्जे धूमिल धूसर, रक्त धूसर या नील रक्त होते हैं।

यह पक्षी बर्मा, मलाया तथा सुमात्रा में पाया जाता है। दक्षिणी-पश्चिमी श्याम (थाईलैंड) में भी पाया जाता है। बोर्नियो में इसकी जगह दूसरी उपजाति पाई जाती है।

नील पद्मपुष्प

आकार—पङ्ख—चार या साढ़े चार इंच, पूँछ—सवा दो या ढाई इंच, गुल्फ—पौने दो इंच, चोंच—एक इंच।

नील पद्मपुष्प का अधोतल आड़ी पट्टियों युक्त होता है। सिर के पीछे की ओर का भाग लाल होता है। आँख के ऊपर से एक काली पट्टी पीछे तक गई होती है। मादा नील पद्मपुष्प का ऊपरी तल तथा पुच्छ आच्छादक भूरा किन्तु नीले रङ्ग की विविध कोटि की पुट लिए होता है। कटि प्रदेश अधिक नीला होता है। ऊपर का लम्बा पुच्छ अच्छादक तथा पूँछ नीले होते हैं। निम्नतल का रङ्ग नर की भाँति किन्तु नीले रङ्ग की मात्रा कम तथा धूमिल पीले रङ्ग की मात्रा अधिक लिए होता है।

नील पद्मपुष्प उप हिमालय में भूटान से लेकर पूर्वी आसाम तक तथा कच्चर, टिपरा, चटगाँव, मनीपुर लुशाई की पहाड़ियों, चिन पहाड़ियों, बर्मा, श्याम और अन्नाम में पाया जाता है।

नील पद्मपुष्प आसाम, दक्षिणी बर्मा तथा दक्षिणी श्याम में मई-जून में अण्डे देता है। यह मैदानी भागों में अण्डे देता है परन्तु आसाम में जुलाई में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसके घोंसले ६ इंच से लेकर १० इंच तक लम्बे होते हैं। जहाँ बाँस की पत्ती सुलभ होती है, वहीं घोंसला बनाने में सुविधा होती है। भूमि पर घोंसला बना होने पर कूड़ाकबाड़ जुटा कर पेंदा बनाता है। बाहर की ओर चाहे जितनी सर्दी हों, परन्तु घोंसले के अन्दर पत्तियों, जड़ों आदि के अस्तर के कारण गर्मी रहती है। यह भूमि पर बना होने पर ऐसा अटपटा होता है कि देखने वाला चुपचाप निकल जाय परन्तु उसे घोंसला होने का पता न चल सके। तीन चार से लेकर सात अण्डे तक एक बार देता है। अण्डे का तल चीनी मिट्टी की तरह चमकता श्वेत होता है। काले लाल रङ्ग के धब्बे भी उस पर होते हैं।

यह पक्षी स्थानीय रूप में प्रवासी ज्ञात होता है। यह बाँस के घने जङ्गल या झाड़-झंखाड़ में रहता है। बड़ा शरमीला होता है। तनिक भी खटका होने पर छिप जाता है। यह भूमि पर कूद-कूद कर ही भाग कर काम चलाता है, परन्तु विशेष अवसर पर उड़ भी सकता है। यह विशेषतया चींटी, दीमक आदि खाता है किन्तु कोई भी कीड़ा-मकोड़ा खा सकता है।

—:०:—

पृथुतुंडक वंश

दीर्घपुच्छ पृथुचंचु

स्था० नाम—रैई (नेपाल) दाव हंगरी राजा (कच्चरी)

आकार—पूर्ण लम्बाई—सात या पौने आठ इञ्च, पङ्ख—चार या सवा चार इञ्च, पूँछ –चार से साढ़े पाँच इंच तक, गुल्फ—एक इंच से कुछ अधिक, चोंच—पौन इञ्च लम्बी तथा मूल भाग में पौन इंच चौड़ी।

दीर्घपुच्छ पृथुचंचु एक विशेष वंश का पक्षी है जिसकी चोंच बड़ी चौड़ी और चपटी होती है। पैर की पादांगुलियाँ डालों पर बैठ सकने योग्य होती हैं। पिछली पादांगुलि बड़ी होती है। आगे की पादांगुलि में बाहर की तथा बिचली पादांगुलि आधार स्थल में जुटी होती हैं। पूँछ गोल होती है।

दीर्घ पुच्छ पृथुचंचु के सिर पर चमकीले नीले रङ्ग का एक धब्बा होता है। चोंच, आँख के सामने के भाग तथा कान तक एक पतली पट्टी सामने हरापन मिश्रित पीले रङ्ग की होती है। पिछले शीर्ष के दोनों बगल एक चमकीले पीले रङ्ग का धब्बा होता है। शेष सिर का भाग तथा गर्दन के पार्श्व भाग काले होते हैं। ठुड्डी तथा कण्ठ का रङ्ग चमकीला पीला होता है। वह पीठ पर पट्टे समान बना होता है किन्तु बीच में चमकीले नीले रङ्ग की पट्टी द्वारा वह लुप्त हो गया होता है। ऊपरी तल गहरा हरा होता है। इसकी पूँछ पङ्ख से बड़ी होती है। पूँछ तथा पंखों का अधोतल काला होता है। शरीर का शेष अधोतल चमकीला धूमिल हरा होता है। उसमें अधिकांश पक्षियों में नीले रङ्ग की पुट होती है।

दीर्घपुच्छ पृथुचंचु का प्रसार क्षेत्र हिमालय में कमायूँ तथा मसूरी से लेकर पूर्वी आसाम तक तथा मनीपुर, लुशाई की पहाड़ियाँ आदि है।



दीर्घपुच्छ पृथुचंचु

टिपरा की पहाड़ियों, चटगाँव, बर्मा तथा मलाया में भी पाया जाता है।

यह प्रायः २००० से ४००० फुट की ऊँचाई तक और कभी-कभी ६००० फुट की ऊँचाई तक पहाड़ों में पाया जाता है। पहाड़ों के अंचल में भी पाया जाता है। विशेषतया मई जून में अण्डे देता है। इसका घोंसला बहुत भारी होता है। वह तीन या साढ़े तीन फीट तक लम्बा होता है। हरी पत्ती या सूखी पत्तियों, घास रेशों आदि का अस्तर दिया होता है। पानी के ऊपर लटकी डालों में ही अधिकतर घोंसले बनाता

है। एक बार टेलीग्राफ के तारों में बने घोंसले देखे गए थे। पाँच छः या आठ अण्डे तक एक बार देता है। यह पहाड़ी जङ्गलों में रहता है। जाड़े में मैदानी भाग में चला आता है।

यह तोतों की तरह डाल पर नीचे से ऊपर की ओर चढ़ने का अभ्यस्त है। किसी लटकती बेल के अन्तिम सिरे से ऊपर की ओर चढ़ते रह कर पत्तों के कीड़ों पर दृष्टि रखता है। इसके पंजों के चौड़े नर्म तले पतली टहनी भी दृढ़तापूर्वक पकड़ सकने की शक्ति प्रदान करते है। यह भली भाँति उड़ता है परन्तु तीव्रता से नहीं उड़ता। उड़ते हुए पतिंगों को प्रायः पकड़ कर खा जाता है। खाते समय कुछ शब्द सा करता रहता है जिसे कुछ गायन रूप का कह सकते हैं। किन्तु वह गायन न होकर कर्ण कटु शब्द ही होता है।

—:०:—

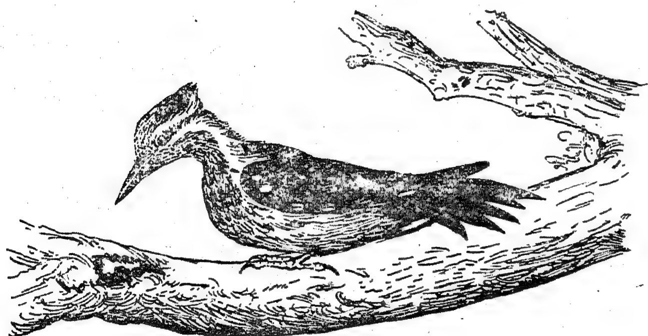
काष्ठकूट वंश

स्वर्णपृष्ठ काष्ठकूट (कठफोरवा)

आकार—पंख—६ इंच, पूँछ—३$\frac{३}{४}$ इच से कुछ कम, गुल्फ – १ इंच, चोंच—१$\frac{१}{२}$ इंच।

इस कठफोरवा के नर में मादा से यह अन्तर होता है कि शीर्ष तथा शिखा पूर्णतः गहरे लाल रङ्ग की होती है। यह अकेले या जोड़े रूप में पेड़ के तनों पर बाग-बगीचों में रहता है।

स्वर्णपृष्ठ काष्ठकूट की पाँच उपजातियाँ पाई जाती हैं। (१) उत्तर (२) दक्षिण (३) सिन्धु (४) सिंहल (५) लोह पृष्ठ



स्वर्णपृष्ठ काष्ठकूट

सिंहल। पाँचवी उपजाति का ऊपरी तल या पृष्ठ लाल लोहे समान होता है। इसलिए उसे लोहपृष्ठ कहते हैं, परन्तु शेष उपजातियों की पीठ किसी न किसी रूप के पीले रङ्ग की होती है। इसलिए वे स्वर्णपृष्ठ हैं।

इनमें पहली और तीसरी उपजाति का कण्ठ काली तथा श्वेत खड़ी रेखाओं युक्त होता है किन्तु उत्तर स्वर्णपृष्ठ काष्ठकूट की पीठ जहाँ सुनहले पीले रङ्ग की होती है, वहाँ सिन्धु स्वर्ण पृष्ठ काष्ठकूट की पीठ पके नींबू के समान मटमैले पीले रङ्ग की होती है। दूसरी और चौथी उपजातियों के कण्ठ में आड़ी-आड़ी श्वेत काली पट्टियाँ होती हैं, परन्तु दूसरी उपजाति (दक्षिण स्वर्णपृष्ठ काष्ठकूट) में पङ्ख की लम्बाई ५½ इञ्च से अधिक होती है और पीठ का रङ्ग नारङ्गी पीला होता है। चतुर्थ उपजाति (सिंह स्वर्णपृष्ठ काष्ठकूट) में पङ्ख की लम्बाई ५½ इञ्च से न्यून होती है तथा पीठ का रङ्ग कम नारंगी होता है।

उत्तर स्वर्णपृष्ठ काष्ठकूट का प्रसार हिमालय के अञ्चल से लेकर पूर्व में आसाम तक तथा दक्षिण में खानदेश (बम्बई) उत्तरी मध्य-प्रदेश तथा उड़ीसा के दक्षिण तक है। इस क्षेत्र के दक्षिण के भाग में दक्षिण स्वर्णपृष्ठ काष्ठकूट पाया जाता है। लोहपृष्ठ सिंहल में ही होता है और सिन्ध स्वर्णपृष्ठ पश्चिमी पाकिस्तान में रहता है।

स्वर्णपृष्ठ काष्ठकूट भारत का बारहमासी पक्षी है। यह बाग-बगीचों का पक्षी है। आम के बाग, नारियल के बगीचे या पुराने वृक्षों के ऊपर या खुले जङ्गलों में यह पाया जाता है। यह लज्जालु नहीं होता। वाटिकाओं, अहातों आदि में बस्ती के मध्य घुस आता है। यह जोड़े रूप में ही वृक्षों पर घूमता-फिरता है। पेड़ के नीचे तक उतर कर फिर धीरे-धीरे तने के ऊपर सीधे या परिक्रमा सा करते चढ़ता है और बीच-बीच में कीड़े की इल्ली, या छाल छेद कर रहने वाले कीटों को ढूँढ़ कर खाता है।

इसका जनन काल मार्च से अगस्त तक है। यह एक ऋतु में दो बार जनन करता है। किसी कोटर या स्वयं बनाए छिद्र में वृक्ष पर अंडे देता है, विवर या छिद्र नली रूप का होता है जिसके भीतरी सिरे पर चौड़ा भाग होता है वहीं अंडे देता है। अंडे धब्बेहीन पूर्ण श्वेत होते

हैं। तीन अंडे एक बार में देता है। घोंसले के लिए छिद्र खोदने, अंडा सेने तथा शिशु पालन में नर और मादा दोनों भाग लेते हैं।

पीतभाल कर्बुर काष्ठकूट

आकार—पंख—४ इञ्च, पूँछ—२ इञ्च, गुल्फ—¾ इञ्च, चोंच—१ इञ्च।

पीतभाल कर्बुर काष्ठकूट का आकार बुलबुल के बराबर होता है। इसे चितकबरा कठफोरवा कह सकते हैं। इसकी चोंच लम्बी, पुष्ट तथा नोकीली होती है। पङ्ख कड़े तथा शङ्कु के आकार के होते हैं। इसके शरीर का रङ्ग काले तथा श्वेत रङ्ग से चित्रित (चितकबरा) होता है। भाल का रङ्ग भूरापन युक्त पीला होता है। उदर तथा मलद्वार पर गहरा लाल धब्बा होता है। मादा में सिर के पीछे की चोटी में लाल रङ्ग नहीं होता। यह बाग-बगीचों में अकेले या जोड़े रूप में पाया जाता है।

इसका प्रसार भारत भर में हिमालय की २५०० फुट ऊँचाई से लेकर दक्षिण तक है। मैदानी भागों तथा साधारण ऊँचाई के पहाड़ी भागों में भी पाया जाता है। आसाम में भी पाया जाता है। एक उप-जाति तो दक्षिण पीतभाल कहलाती है और दूसरी उत्तर पीतभाल कर्बुर काष्ठकूट कहलाती है। दक्षिण पीतभाल कर्बुर काष्ठकूट का प्रसार सिंहल तथा दक्षिण भारत में उत्तर में पूना, बरार, बस्तर तथा उत्तरी सरकार तक पाया जाता है। इस क्षेत्र के उत्तर भारत के शेष भाग में उत्तर पीतभाल कर्बुर काष्ठकूट पाया जाता है। इनमें भेद यह होता है कि दक्षिण पीतभाल कर्बुर काष्ठकूट का रङ्ग अधिक गहरा होता है। ऊपरी तल काला अधिक तथा श्वेत कम होता है। अधोतल गहरा भूरा होता है। लाल रंग गहरा होता है। इसके विपक्ष उत्तर पीतभाल कर्बुर काष्ठकूट का रङ्ग हल्का होता है। ऊपरी तल पर श्वेत रङ्ग अधिक विस्तृत

क्षेत्र में होता है। निम्नतल कम भूरा होता है तथा लाल रङ्ग हल्का होता है।

पीतभाल कर्बुर काष्ठकूट आम या अन्य बागों में पाया जाता है। अधिक सघन जङ्गल से दूर रहता है। यह जोड़े रूप में मिलता है और प्रायः अन्य पक्षियों के साथ रहता है। यह एक पेड़ के तने से दूसरे पेड़ के तने पर जाता है और नीचे तक उतर कर तने के ऊपर तिरछे या सीधे रूप में चढ़ता या परिक्रमा करता सा जाता है और बीच-बीच में रुक कर तने की छाल खोदता या छेद में झाँकता जाता है। उसे सदा इन स्थानों में कीड़ों की खोज रहती है। यह अपनी पूँछ को तने से दबा कर तिपाई सा काम लेकर अवलम्ब प्राप्त करता है। अपनी लंबी, प्रसरणशील जीभ से वह कीटों की इल्ली, दीमक आदि पकड़कर खा जाता है। यह क्लिक क्लिक या क्लिकर्रर सा शब्द भी करता है।

इसका जनन काल जनवरी से मई तक है। किसी तने या डाल के सड़ान के भाग को खोदकर यह घोंसला बनाने के लिए छेद कर लेता है। जो डाल आड़ी हो तो उसके घोंसले का द्वार लगभग १½ इञ्च व्यास का नीचे की ओर होता है। विवर के अन्दर कोई अस्तर नहीं दिया होता। यह तीन चमकीले श्वेत अंडे एक बार में देता है। उस पर कोई चित्ती या धब्बा नहीं होता। वृक्ष की डाल या तना खोद कर विवर रूप का घोंसला बनाने, अंडा सेने और शिशु को खिलाने में नर और मादा दोनों हाथ बँटाते हैं।

———

पिप्पल वंश

ब्राह्मशोणोरस पिप्पल (कठखोरा)

स्था० नाम—कठखोरा, तंत्रायत (हि०) छोटा बसन्त बैरी, छोटा बेनेबो (वंग), बसंत सोरई (आसाम)

आकार—पंख—३½ इञ्च, पूंछ—१½ इञ्च, गुल्फ—¾ इञ्च से कुछ अधिक, चोंच—¾ इञ्च ।

ब्राह्मशोणोरस पिप्पल या कठखोरा का आकार गौरैया से थोड़ा बड़ा होता है । इसका रङ्ग घास सा हरा होता है । चोंच भारी होती है । भाल



ब्राह्मशोणोरस पिप्पल

तथा वक्षस्थल गहरा लाल होता है । अधोतल हरे रङ्ग की रेखाओं युक्त पीला होता है । पूंछ छोटी तथा चौकोर होती है । उड़ान के समय

त्रिकोण सा जान पड़ती है। इसके नर-मादा समान होते हैं। यह बरगद या पीपल के वृक्ष पर अकेले या शिथिल झुंड रूप में पाया जाता है।

यह सारे भारत के मैदानी भागों तथा हिमालय में २५०० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह बहुत प्रचलित पक्षी है। यह ठठेरे की तरह ठुक-ठुक का शब्द दिन भर करता रहता है। यह बरगद, पीपल आदि पेड़ों पर सर्वत्र पाया जाता है। ये वृक्ष चाहे जङ्गल में हों चाहे बस्ती के मध्य हों, उन पर यह आश्रय प्राप्त कर रहता है। शब्द करते हुए यह अपने सिर को इस बगल से उस बगल कंपित करता है। यह सदा वृक्षों पर ही रहता है। भूमि पर कभी नहीं उतरता। इसका आहार फल, गोंदे आदि ही हैं। यह इनका आहार करने के लिए मैना, बुलबुल, तोतों आदि के साथ वृक्ष पर पड़ा रहता है। कभी-कभी पतिंगे या परदार दीमक भी पकड़कर खा जाता है। उनका पीछा करते हुए डाल पर से तुरन्त उड़ान करता है।

इसका जनन काल जनवरी से जून तक है। कभी-कभी दो बार जनन करता है। यह सड़ान गलान वाली डालों में ६ या ८ इंच गहरा छेद बना कर उसमें अंडे देता है। उनको बढ़ा-बढ़ा कर प्रति वर्ष प्रयुक्त करता है। धीरे-धीरे वे छिद्र कई फुट गहरे बन गए होते हैं। आड़ी डाल में छिद्र बनाने पर कठफोरवा की तरह नीचे की ओर ही विवर का द्वार रखता है जिसका व्यास दो इंच होता है। अंडे चमकहीन उजले होते हैं। तीन अंडे एक बार में देता है। घोंसले के लिए छिद्र बनाने, अंडा सेने तथा शिशु पालन में नर और मादा दोनों का हाथ होता है।

—:०:—

परभृत वंश

प्रख्यात चातक (पपैया)

स्था० नाम—कपक, उपक, पपैया (हि०) चोक गल्लो (वंग०)

आकार—पंख—७ या ७$\frac{1}{4}$ इंच, पूंछ—६ या ७ इंच, गुल्फ—१ इंच, चोंच—$\frac{3}{4}$ इंच से कुछ अधिक।

चातक या पपैया का आकार कबूतर के बराबर होता है। यह कृश-काय पक्षी है। पूँछ लंबी होती है। ऊपरी तल भस्मीय धूसर अधोतल उजला सा तथा भूरी आड़ी पट्टियों युक्त होता है। पूँछ पर आड़े रूप में चौड़ी-चौड़ी पट्टियाँ होती हैं। नर और मादा समान रूप के होते हैं।

यह भारत का बारहमासी पक्षी है। यह भारत भर में पाया जाता है। हिमालय के अंचल में भी मिलता है। स्थानीय रूप से स्थानान्तर भी करता है।

यह विरल तथा पतझड़ वाले वृक्षों के जंगल में पाया जाता है। वाटिकाओं, बाग-बगीचों, विशेषतया आम के बागों और खेतों में यह पाया जाता है। शीतकाल में यह शान्त रहता है। किन्तु ग्रीष्म ऋतु के आगमन पर वर्षा के निकट अपनी प्रिय बोली "पी कहाँ पी कहाँ" प्रारंभ कर देता है। महाराष्ट्र में उसकी बोली को "पावस आल्म" अर्थात् "वर्षा ऋतु (पावस) आ गई" प्रतिध्वनित करने की कल्पना की जाती है। बहुत अधिक बोलने से इसे मानसिक उत्ताप का पक्षी भी कहा जाता है। सारे दिन और रात के भी अधिक समय तक या चाँदनी रात में तो रात भर इसका शब्द सुनाई पड़ता रहता है।

यह भूमि के निकट तीव्र पंख फटफटा कर कुछ दूर निष्कंप पंखीय उड़ान उड़ कर डालों पर क्षिप्र गति से उतरता है। इससे छोटे पक्षी बाज की भाँति डर जाते हैं। इसका आहार रोमयुक्त इल्ली तथा कोमलांगी कीट हैं। जंगली फल, झरबेरियाँ आदि भी कभी-कभी खाता है।

इसका जनन काल मार्च से जून तक है। इसको भी उन पक्षियों की श्रेणी में गिना जाता है जो अपने अंडे दूसरे पक्षियों के घोंसले में सेने के लिए रख आते हैं। इसका बच्चा उत्पन्न होने के बाद अन्य शिशु पक्षियों को घोंसले से बाहर गिरा देता है। इससे इसको इन नर-मादाओं द्वारा यथेष्ट आहार प्राप्त होता है जिनके बच्चे यह उनके वास्तविक घर से निकाल फेंके होता है।

सारङ्ग चातक

स्था० नाम—पपैया, चातक (हि०) कोला बुलबुल (बंग०)
गोला कोकिला (तेलगू)

आकार—पंख—लगभग ६ इंच, पूंछ—६$\frac{1}{4}$ इंच, गुल्फ—१ इंच से कुछ अधिक, चोंच—$\frac{3}{4}$ इंच से कुछ अधिक।

सारंग चातक मैना के आकार का पक्षी है। इसकी पूँछ बहुत बड़ी होती है। इसके शरीर का ऊपरी तल तथा शिखा काली होती है। अधो-तल श्वेत होता है। पंख पर एक उजला सा धब्बा होता है। पूँछ की छोर पर श्वेतपट्टी होती है जो उड़ान के समय प्रमुख रूप से दिखाई पड़ती है। नर और मादा समान रंग के होते हैं। यह बाग-बगीचों में अकेले या जोड़े रूप में पाया जाता है।

यह सारे भारत में पाया जाता है। हिमालय में ८००० फुट की ऊँचाई तक भी मिलता है। इसकी दो उपजातियाँ पाई जाती हैं। एक साधारण सारंग चातक, दूसरी सिंहल चातक। इनमें यह अन्तर होता है कि साधारण सारङ्ग चातक के पंख श्वेत और काले होते हैं। परन्तु

सिंहल सारङ्ग चातक के पंख बादामी होते हैं। सिंहल सारङ्ग चातक को सिंहली भाषा में कोंडै कोहा और तामिल में कोंडै कुपिल कहते हैं। यह सिंहल में ही पाया जाता है। साधारण सारङ्ग चातक निम्न हिमालय, काश्मीर से लेकर त्रावणकोर तक पाया जाता है। पश्चिम में अफगानि-



सारङ्ग चातक

स्तान तथा पूर्व में बर्मा तक भी उसका प्रसार है। यह सहारा के दक्षिण दक्षिणी अफ्रीका के अधिकांश में भी पाया जाता है।

सारङ्ग चातक खेतों के निकट के खुले बाग-बगीचों में पाया जाता

है। बस्ती के पड़ोस में वाटिकाओं, बाग-बगीचों में यह प्रायः मिलता है। कभी-कभी जंगलों में भी मिलता है। यह पिड पिड—पी-पी—पिड··· पी-पी–पिड की टेर लगाता है। यह शब्द कहीं वृक्ष की चोटी पर बैठे या उड़ते सुनाता है। रात की चाँदनी में यह शब्द कभी-कभी सुनाई पड़ जाता है। यह वृक्षजीवी पक्षी है। वृक्षों तथा झाड़ियों पर ही रह कर आहार प्राप्त करता है। कभी-कभी भूमि पर भी आहार की खोज में उतर आता है। इसका आहार टिड्डे, इल्ली और कुछ झरबेरियाँ भी हैं।

सारंग चातक को आंशिक रूप में परोपजीवी कहा जा सकता है क्योंकि यह अपने अंडे हहोलिका (सतबहिनी या चरखी) के घोंसले में उसके अंडों के साथ ही रख आता है। इसके नीले रंग के अंडे उन अंडों के रंग के ही होते हैं। एक ही घोंसले में कई सारंग चातक अपने अंडे रख देते हैं। यदि ऐसा न हो तो सारंग चातकों को अंडों को रखने के लिए नए-नए नित्य घोंसले पाना कठिन हो। जिस सारंग चातक का शिशु पहले उत्पन्न होता है वह बाद में उत्पन्न होने वाले अन्य सारंग चातकों के शिशुओं को एक-एक कर बाहर फेंकता जाता है। अतएव वह अपनी प्रभुता अकेली जमाता है। हहोलिका के अंडों से जन्मे बच्चों को भी बाहर फेंकना उसके लिए सुगम होता है। बेचारे हहोलिका पक्षी इस शिशु को ही अपना समझकर आहार भी कराते हैं। यह प्रकृति का एक विचित्र खेल है।

श्याम कोकिल (कोयल)

स्था० तथा पर्याय नाम—कोयल, कोकिल, कोकिला

आकार—पङ्ख—७½ या ८¼ इंच, पूंछ—८ इंच, गुल्फ—१½ इंच चोंच—१¼ इंच

कोयल या श्याम कोकिल के नर का रंग चमकीला काला तथा चोंच

का रंग पीलापन युक्त हरा होता है। मादा का रंग भूरा किन्तु श्वेत रंग से चित्रित तथा पङ्क्ति होता है। यह बाग बगीचों में अकेले या जोड़े रूप में पाया जाता है।

श्याम कोकिल (कोयल) का प्रसार सारे भारत में पाया जाता है। यह हमारे देश का बहुत प्रचलित तथा साधारण पक्षी है। इसकी बोली से ही इसकी विद्यमानता ज्ञात हो जाती है। छोटे-छोटे बच्चे भी चिढ़ाने का स्वांग सा करते कूकू की रट उसके चुप रहने की अल्प कालीन अवधि में लगा देते हैं। यह पत्राच्छादित बड़े वृक्षों, बागों-बाटिकाओं में दिखाई पड़ता है। यह वृक्ष जीवी है। भूमि पर कभी नहीं आता। शीत ऋतु में यह शान्त रहता है, परन्तु ग्रीष्म के आगमन पर इसका सन्तानोत्पादन काल भी आ पहुँचता है, इस कारण इसकी बोली से आकाश प्रतिध्वनित हो उठता है। कूऊ कूऊ की बोली किसी भी ग्रामीण व्यक्ति को कोयल की स्मृति दिलाने में भूल नहीं होने दे सकती।

इसका आहार बरगद, पीपल आदि के गोदे तथा झरबेरियाँ हैं। कीड़े तथा इल्लियाँ भी खाता है। इसका सन्तानोत्पादन काल अप्रैल से अगस्त तक है। यह समय कौओं के सन्तानोत्पादन का भी होता है अतएव यह अपने अंडे उनके घोंसले में रख कर उनसे ही सेवा कराता है। इसके अंडे कौए के अंडे से कुछ छोटे धूमिल धूसर मिश्रित हरे होते हैं लाल भूरे रङ्ग की चित्तियाँ उस पर होती हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि नर कोकिल कौए का पीछा कर दूर भगा ले जाता है। उधर मादा कोयल उसके घोंसले में अंडे दे देती है। इसके प्रमाण हैं कि कोयल का बच्चा कौए के बच्चों को घोंसले से बाहर फेंक देता है और स्वयं अपना पोषण कौओं से भली भाँति कराता है।

प्रख्यात कुक्कुभ (महोख)

स्था० तथा पर्याय नाम—महोख (हि०) कूका (बंग०) कूकू सोरई (आसाम) दान दी दाई—कच्चरी ।

आकार—पङ्ख—८ से ९ १/४ इञ्च तक, पूँछ ५ या ६ १/२ इञ्च तक, गुल्फ—८ १/२ इञ्च; चोंच—१ १/२ इञ्च

कुक्कुभ (महोख) का आकार काले कौए (वन काक) के बराबर होता है । इसका रङ्ग चमकीला काला होता है । पङ्ख बादामी रङ्ग के होते



प्रख्यात कुक्कुभ (महोख)

हैं । पूँछ लम्बी, चौड़ी तथा काली होती है । नर और मादा समान रङ्ग रूप के होते हैं ।

सारे भारत में यह पक्षी पाया जाता है। हिमालय में भी ६००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। यह खुले भाग के मैदान तथा पहाड़ी भागों का पक्षी है। घास झाड़ी आदि के बड़े मैदानों के बीच-बीच जहाँ बड़े वृक्ष खड़े हैं वहाँ वह विशेष रूप से पाया जाता है। यह खेतों तथा बस्तियों के निकट पाया जाता है। इसके पङ्ख छोटे तथा गोल होते हैं। अतएव उड़ने में यह दुर्बल है। यह "ऊक" शब्द थोड़े-थोड़े समय पर उच्चारित करता है। ग्रीष्म ऋतु में इसका शब्द विशेष रूप से सुनाई पड़ता है। यह एक दूसरा शब्द कूप कूप कूप कूप आदि जल्दी-जल्दी उच्चारित करता है जो प्रति सेकेंड २ या ३ कूप के हिसाब से ६ से बीस बार तक दुहराता सुनाई पड़ता है। इसी शब्द को तुरन्त ही कोई दूसरे स्थान पर का कुक्कुभ (महोख) दुहराना प्रारम्भ करता है मानो दोनों में शब्दोच्चार की होड़ लगी है।

इसका आहार टिड्डे, भुनगे, इल्लियाँ, जङ्गली चूहे बिच्छू, गिरगिट, साँप आदि है। दूसरे पक्षियों का अंडा भी बहुत नष्ट करता है।

इसका सन्तानोत्पादन काल फरवरी से सितम्बर तक है। यह अपने अंडे सेने तथा शिशुपालन का भार स्वयं अपने ऊपर ही लेता है। इसका घोंसला किसी झाड़ी या कटीले वृक्ष में बना होता है। तीन या चार अंडे एक बार में देता है। अंडों का रङ्ग श्वेत धब्बाहीन होता है। नर और मादा दोनों ही घोंसला बनाने, अंडा सेने तथा शिशु पालन में भाग लेते हैं।

—:०:—

शुक वंश

भारत राजशुक

स्था० तथा पर्याय नाम—राज तोता (हि०) चंदावाणी (मसूरी)
करन सुग्गा, कररिया (नेपाल), चंदना (वंग०)

आकार—पङ्ख—(नर) ८ या ९ इञ्च, मादा ७$\frac{३}{४}$ या ८$\frac{१}{२}$ इञ्च, चोंच—(नर) १$\frac{१}{२}$ इञ्च, मादा १$\frac{१}{२}$ इञ्च से कुछ कम।

भारत राजशुक (राज तोता) का आकार कबूतर के बराबर होता है किन्तु इसकी पूँछ नोकीली और लम्बोतरी होती है। शरीर का रङ्ग घास समान हरा होता है। इसकी चोंच छोटी, गहरी मुड़ी हुई (बडिश या मछली मारने के काँटे समान) और लाल रङ्ग की होती है। प्रत्येक स्कन्ध पर भूरा लाल धब्बा होता है। नर की गर्दन लाल गुलाबी तथा काले रङ्ग का कंठा होता है, किन्तु मादा में यह कंठा नहीं होता। यह झुंड रूप में खेतों तथा बाग-बगीचों में शोर मचाता रहता है।

राज शुक भारत भर में पाया जाता है। इसकी चार उपजातियाँ होती हैं : (१) सिंहल राज शुक (२) भारत राज शुक (३) ब्राह्म राज शुक (४) कृष्ण द्वीप (ऐंडमन) राज शुक। कृष्ण द्वीप राज शुक की चोंच १$\frac{३}{४}$ इञ्च या इससे बड़ी होती है किन्तु अन्य तीन उपजातियों में इससे कुछ छोटी होती है तथा ऊपरी चोंच से नेत्र तक मूँछ की तरह एक रेखा भी होती है जो भारत राज शुक में बड़ी चौड़ी होती है, परन्तु सिंहल तथा ब्राह्म राजशुक में पतली होती है। सिंहल राज शुक का गुल्फ (पंजे से ऊपर के प्रथम जोड़ तक का पैर का भाग) स्लेटी रङ्ग का होता है, परन्तु ब्राह्म राज शुक का गुल्फ पीले रङ्ग का होता है।

सिंहल राजशुक सिंहल (सीलोन) में होता है। ब्राह्म राज शुक सिक्किम से पूर्वी आसाम तक तथा पूर्वी पाकिस्तान, सुन्दरबन और बर्मा में भी पाया जाता है। कृष्णद्वीप राजशुक ऐंडमन द्वीप में ही पाया जाता है। इनके विपक्ष भारत राजशुक का प्रसार क्षेत्र उत्तरी तथा मध्यवर्ती भारत में दक्षिणी पश्चिमी तट पर कनारा तक, मध्यप्रदेश में रायपुर संभलपुर तक पाया जाता है। यह निम्न हिमालय में भी पाया जाता है।

भारत राजशुक का जननकाल जनवरी फरवरी है। कुछ पक्षी दिसम्बर में ही या उधर देर में अप्रैल तक जनन करते हैं। इसका घोंसला कोई स्वाभाविक वृक्ष-कोटर हो सकता है जिसे यह बड़ा कर लेता है या स्वयं कोई कोटर बना लेता है। कोटर बनाने के लिए यह प्रायः नर्म काष्ठ का ही वृक्ष चुनता है किन्तु नर्म काठ का वृक्ष ही सदा नहीं चुनता। बहुत ऊँचाई पर भी कोटर बने होते हैं, नर और मादा दोनों ही अंडा सेने में नर और मादा दोनों साथ देते हैं। वे निकट निकट बैठे होते हैं। अंडे में हाथ लगाने पर हमला करते हैं। ये पाले जाते हैं परन्तु थोड़े शब्द ही दुहरा पाते हैं।

पाटलकण्ठ राजशुक (लिबरतोता)

स्था० तथा पर्याय नाम—तोता, लिब्बर तोता (हि०) रागू (महाराष्ट्र)

आकार—पङ्ख (नर) ६$\frac{3}{4}$ इञ्च, (मादा) ६ या ६$\frac{1}{2}$ इञ्च, पूँछ—(नर) ८$\frac{1}{2}$ या ९ इञ्च, मादा ७$\frac{1}{2}$ या ७$\frac{3}{4}$ इञ्च, गुल्फ—$\frac{3}{4}$ इञ्च, चोंच—१ इंच।

पाटलकंठ राजशुक (लिब्बर तोता) का आकार मैना से थोड़ा बड़ा होता है तथा लम्बी नोकीली पूँछ होती है। यह भारत राजशुक की जातियों का छोटा प्रतिरूप होता है किन्तु इसके स्कन्ध पर लाल भूरा धब्बा नहीं होता। मादा में नर का लाल गुलाबी और काला कंठा नहीं होता। यह झुंड रूप में खेतों तथा बागों में शोर मचाता पड़ा रहता है।

पाटलकंठ राजशुक की दो उपजातियाँ पाई जाती हैं :-(१) साधारण पाटलकंठक राजशुक (२) प्राच्य पाटलकंठक राजशुक। इनमें विशेष अन्तर यह होता है कि साधारण पाटलकंठक राजशुक की निचली चोंच काली होती है परन्तु प्राच्य पाटलकंठक राजशुक की निचली चोंच लाल होती है।

साधारण पाटलकण्ठ राजशुक का प्रसार क्षेत्र सिंहल, उड़ीसा तक दक्षिण भारत, बंगाल (भारतीय), पञ्जाब (दोनों) सीमान्त प्रदेश (पाकिस्तान) तथा बिहार तक हिमालय का अञ्चल है। यह ५००० फुट की ऊँचाई तक पहाड़ों में पाया जाता है। किन्तु प्राच्य पाटल कंठ राजशुक का प्रसार क्षेत्र सिक्किम से आसाम तक तथा पूर्वी पाकिस्तान है। बर्मा में भी पाया जाता है।

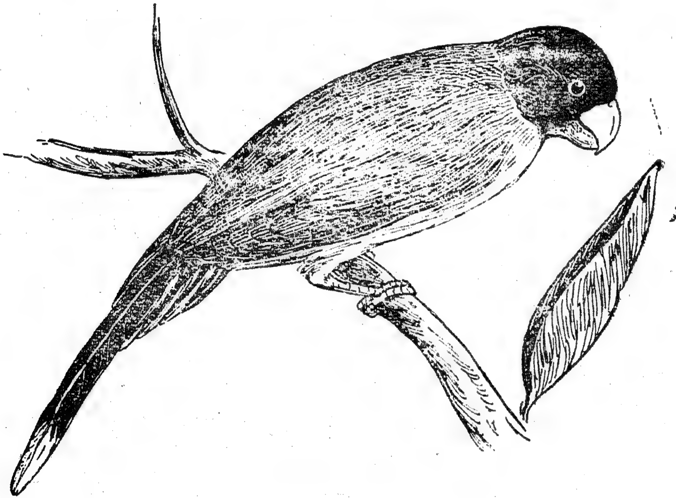
पाटलकण्ठ राजशुक का जनन सारे प्रसार क्षेत्र में फरवरी-मार्च में होता है। कभी-कभी अप्रैल तक भी शिशु उत्पन्न होते हैं। वृक्षों के स्वाभाविक या बनाए हुए कोटरों में अण्डे देता है। अपने बनाए कोटर में दो इञ्च व्यास का सुन्दर गोल द्वार बनाता है। कठफोरवा के पुराने कोटर भी प्रयुक्त कर लेता है। आम के वृक्ष में इसके कोटर अधिक पाए जाते हैं। कोटर उपयुक्त होने पर वाटिका का कोई वृक्ष भी इसके जनन का स्थल हो सकता है। पुरानी दीवालों तथा मकानों में भी अंडे दे सकता है। ४ से ६ अंडे तक एक बार में देता है। यह बहुत प्रसारित तथा प्रचलित तोता है। बाग-बगीचों, गाँव के खेतों आदि में सर्वत्र पाया जाता है। इसकी तीव्र उड़ान तथा बोली सबको विदित है। यह अनाज के दाने तथा फल ही खाता है। खेती को इससे भारी हानि पहुँचती है।

रक्तांग शुक (टुइयाँ)

स्था० तथा पर्याय नाम—टुइयाँ तोता (हिं०) टुईं सुग्गा (नेपा०), कीर (महारा)

आकार—पङ्ख—(नर) ५$\frac{१}{२}$ या ५$\frac{३}{४}$ इञ्च, (मादा) ५$\frac{१}{४}$ या ५$\frac{१}{२}$ इंच, पूँछ—(नर) ८$\frac{१}{२}$ से ६$\frac{१}{२}$ इंच तक, (मादा) ६$\frac{१}{४}$ इंच से ७$\frac{३}{४}$ इंच तक, गुल्फ – $\frac{१}{२}$ इंच, चोंच – $\frac{३}{४}$ इंच।

रक्तांग शुक या टुइयाँ तोता का आकार लगभग मैना के बराबर होता है। इसका शरीर उससे अधिक कृश होता है। इसकी पूँछ नोकीली



रक्तांग शुक

तथा लम्बी होती है। पाटलकण्ठ राज शुक से इसकी विभिन्नता बताने में इसका छोटा आकार और नीलापन युक्त लाल सिर यथेष्ट है। स्कन्ध पर लाल भूरा धब्बा या तो लुप्त रहता है या नाम मात्र को रहता है। इसका झुंड खेतों, बागों आदि में पाया जाता है।

रक्तांग शुक या टुइयाँ तोता की दो उपजातियाँ होती हैं—(१) पश्चिम रक्तांग शुक (२) वंग रक्तांग शुक। इनकी विशेषता यह है कि पश्चिम रक्तांग शुक में अधोतलीय पुच्छ आच्छादक तथा कटि प्रदेश का रंग नीलापनयुक्त हरा होता है किन्तु वंग रक्तांग शुक में अधोतलीय पुच्छ आच्छादक तथा कटि प्रदेश का रंग केवल हरा होता है, नीलापन युक्त नहीं होता। पश्चिम रक्तांग शुक का प्रसार क्षेत्र सिंहल तथा भारत में हिमालय की तराई से लेकर सारे भारत के बाग-बगीचों में है। हिमालय में ६००० या ७००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है बंगाल, बिहार, सिक्किम तभा भूटान में भी मिलता है। किन्तु वंग रक्तांग शुक का प्रसार क्षेत्र दोनों बंगाल, नेपाल, सिक्किम तथा आसाम है। बर्मा, हिन्द चीन तथा दक्षिणी चीन में भी होता है।

पश्चिम रक्तांग शुक का जनन काल सिंहल में फरवरी से मई तक, दक्षिण भारत में फरवरी से प्रारम्भिक अप्रैल तक, निम्न हिमालय में अप्रैल मई तथा बिहार में फरवरी से प्रारम्भ मई तक है। यह अपने लिए प्रायः स्वयं कोटर खोदता है। इसके लिए कोई सड़ी डाल खोज लेता है। प्रायः कई पक्षी निकट-निकट कोटर बनाते हैं। कभी-कभी इनका पूरा उपनिवेश सा बना होता है। बिहार में यह वर्षा के प्रारम्भ होने के पूर्व जून में अधिक पाया जाता है किन्तु बाद में जनन के लिए पहाड़ों में चला जाता है। इसकी बोली अन्य सुग्गों से मीठी होती है। यह कभी जंगलों में भी पाया जाता है, परन्तु खुली तथा बाग-बगीचों की भूमि अधिक पसन्द करता है।

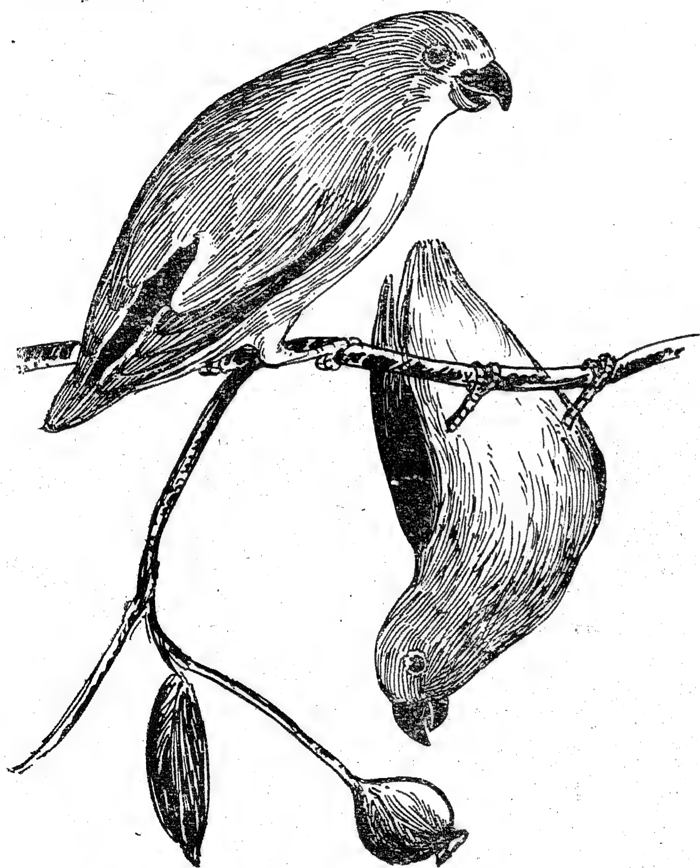
भारत पुत्रशुक

स्था० नाम—लटकन (पूर्वी हिन्दी) दाव बातोर लाई (कच्चरी)

आकार—पङ्ख—लगभग ४ इंच, पूँछ—१½ इञ्च गुल्फ—तिहाई इंच से कुछ अधिक, चोंच—आधा इञ्च से कम।

भारत पुत्रशुक का आकार गौरैया के बराबर होता है। इसके शरीर

का रङ्ग घास सा हरा होता है। पूँछ छोटी तथा चौकोर होती है। कटि



भारत पुत्रशुक

प्रदेश यथेष्ट लाल होता है। नर में एक धब्बा कण्ठ में होता है। किन्तु

मादा में नहीं होता। यह एकाकी या छोटे झुण्डों में बाग-बगीचों तथा वाटिकाओं में पाया जाता है।

पुत्रशुक की दो उपजातियाँ हैं (१) भारत पुत्रशुक (२) केरल पुत्र शुक जिसे दक्षिण में भोरा या भोअरा कहते हैं। इन दोनों में यह अन्तर है कि भारत पुत्रशुक का ऊपरी तल अधिक पीला हरा तथा चटकीला होता है, परन्तु केरल पुत्रशुक का ऊपरी तल अधिक मैला तथा न्यून पीला हरा होता है।

भारत पुत्रशुक का प्रसार क्षेत्र हिमालय में सिक्किम के लेकर आसाम तथा पूर्वी पाकिस्तान तक है। बर्मा, ऐंडमन तथा दक्षिण पश्चिम श्याम में भी पाया जाता है।

भारत पुत्रशुक का जनन काल आसाम में फरवरी से अन्तिम अप्रैल तक है। ऐंडमन में जनवरी से मार्च तक तथा बर्मा में जनवरी फरवरी में है। वह तीन या चार अंडे एक बार में देता है। अण्डों का रङ्ग श्वेत किन्तु प्रायः धब्बे युक्त होता है। कोटर बनाने के लिए थोड़ी ऊँचाई पर की कोई सड़ी गली डाल या खूँट ढूंढ़ता है। कोई स्वाभाविक कोटर ढूँढ़कर उसका मुँह बड़ा कर लेता है।

केरल पुत्रशुक दक्षिण में दक्षिणी पश्चिमी तट पर कुमारी अन्तरीप से बम्बई तक पाया जाता है। नीलगिरि तथा आस-पास की पहाड़ियों में भी पाया जाता है।

पुत्रशुक का निवास पहाड़ी या मैदानी भाग के हरे-भरे भागों में होता है। यह फल के बागों तथा वाटिकाओं का प्रेमी है। खर तथा कहवे के बगानों में भी पाया जाता है। यह बारहमासी है, परन्तु स्थानीय स्थानान्तर भी करता है। इसका आहार, फल, झरबेरियाँ आदि है। ऋतु के अनुसार उनकी खोज में स्थान बदलता है। सेमल के फूल का मधु भी पीता है। पत्तों से रङ्ग मिलने के कारण इनको वृक्षों में देख सकना कठिन होता है। उड़ने पर ही पता चलता है।

नीलकंठ वंश

भारत चाष (नीलकण्ठ)

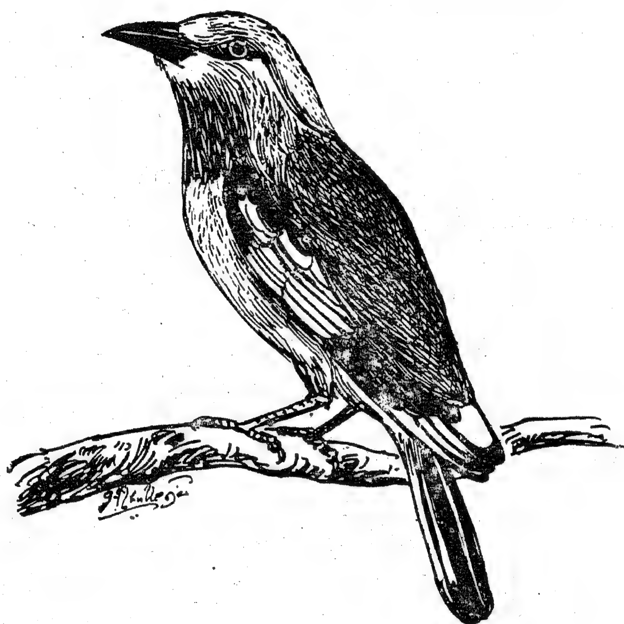
स्था० तथा पर्याय नाम—नीलकण्ठ, सब्जक (हि०) वास (महारा०)

आकार—पङ्ख—७ या ७$\frac{3}{4}$ इंच, पूँछ—५$\frac{1}{2}$ इंच, गुल्फ—१ इंच, चोंच—१$\frac{1}{2}$ इंच।

भारत चाष (नीलकण्ठ) का आकार मैना के बराबर होता है। इसका चोंच भारी होता है। वक्षस्थल लाल भूरा, उदर तथा पुच्छ का अधोतल नीला होता है। पङ्ख पर गहरे और धूमिल नीले रङ्ग के भाग उड़ान के समय चमकीली पट्टियों रूप में दिखाई पड़ते हैं। नेत्र के सम्मुख का भाग (नेत्रपटी इसे कह सकते हैं। कान के सामने का भाग कनपटी कहा जाता है। उसी प्रकार पक्षियों में नेत्र और चोंच के मध्य के भाग को नेत्रपटी कह सकते हैं) माल, तथा हनु लाल भूरा या भूरापन युक्त श्वेत होता है। सिर के पीछे या गर्दने के ऊपर का भाग नीलापन युक्त हरा तथा आँख के ऊपर बहुत ही अधिक नीला होता है। मध्यवर्ती पूँछ के पतत्र (पर) मटमैले हरे और छोर पर गहरे नीले रंग की पुट युक्त होते हैं। पार्श्ववर्ती पूँछ के पतत्र (पर) धूमिल नीले किन्तु आधार स्थल तथा अन्तिम छोर पर गहरे नीले होते हैं। कटि प्रदेश हरापन युक्त नीला, पिछली गर्दन तथा पार्श्ववर्ती भाग मटमैले नीलारुण रङ्ग के होते हैं जो एक अस्पष्ट कण्ठा बनाते हैं। मुख्य पङ्ख आधार स्थल तथा छोर पर गहरा नीला तथा बीच में धूमिल नीला होता है। गौण पङ्ख गहरा नीला होता है किन्तु आधार स्थल धूमिल नीला होता है।

त्रावणकोर के दक्षिण के भाग को छोड़कर शेष भारत में भारत चाष

पाया जाता है। हिमालय में भी पाया जाता है। काश्मीर चाष एक दूसरी ही जाति का पक्षी है जो इससे कुछ भिन्न होता है। भारत चाष में वक्ष-स्थल लाल भूरा और अधोपुच्छ आच्छादक तथा उदर नीला होता है परन्तु काश्मीर चाष में सारा अधोतल धूमिल नीला होता है। उड़ान के



भारत चाष (नीलकंठ)

समय इसके पङ्ख में काला नीला रङ्ग प्रमुख दिखाई पड़ता है। काश्मीर चाष ट्रांस काकेशस और तुर्किस्तान से काश्मीर, बिलोचिस्तान, अफगानिस्तान तथा सीमान्त प्रदेश (पाकिस्तान) तक पाया जाता है। यह काश्मीर में मई जून में सन्तानोत्पादन करता है।

भारत चाष (नीलकण्ठ) का जनन काल अन्तिम मार्च के अन्तिम मई तक है। यह चार या कभी-कभी पाँच अंडे देता है। वृक्षों के कोटर पुरानी दीवार, या मकान के अन्तराल या कभी-कभी घर के बारजों में अण्डे देता है। अण्डे के लिए गद्दी बनाने के लिए घास-पात, कूड़ा-कबाड़ एकत्र कर लेता है। कभी-कभी बहुत भारी घोंसले बने दिखाई पड़ते हैं। घोंसले के लिए ऊँचाई का कोई प्रतिबन्ध नहीं जान पड़ता। चढ़ न सकने योग्य वृक्ष पर ५० फुट की ऊँचाई तक इसका घोंसला मिलता है। इसे बहुत नीचे भी पाया जाता है। आम, इमली के वृक्ष तथा ताड़ के सूखे तने पर यह विशेष रूप से घोंसला बनाता है। ताड़ के वृक्ष के खड़े होने पर यह स्वयं भी जीर्ण भाग पृथक् कर अंडा रखने योग्य गड्ढा बना लेता है।

भारत चाष का एक दो या कई जोड़ा प्रत्येक गाँव में पाया जाता है। इसे टेलीग्राफ के तारों पर भी आधे मील तक के बीच कहीं न कहीं बैठा पाया जा सकता है। उत्तर तथा पश्चिमी भारत में यह बिरल जङ्गलों या कस्बों तथा गाँवों के पड़ोस में अवश्य पाया जाता है। यह पवित्र पक्षी माना जाता है। दशहरा पर लोग इसका दर्शन करने के लिक बहुत लालामित रहते हैं। इसीलिए अन्योक्ति कही गयी है :--

काली दशहरा बीतिहैं, धरि मूरख हिय लाज।
दुरे फिरत कत द्रुमन में, नीलकण्ठ बिन काज॥

—:०:—

शार्ङ्ग वंश

प्रख्यात भारत दिव्यक

स्था० तथा पर्याय नाम—पतरिंगा, हरियल (हि०) वनस्पती (वंग०), ताई लिंगी, वेदा रागू (महारा०)

आकार—पङ्ख—३$\frac{3}{4}$ इञ्च, मध्यवर्ती पुच्छ—५ इञ्च, पार्श्ववर्ती पुच्छ—२$\frac{3}{4}$ इञ्च, गुल्फ—$\frac{1}{2}$ इञ्च से कम, चोंच —१ इञ्च।

भारत दिव्यक (हरियल) का आकार गौरैया के बराबर होता है। यह चटक हरे रंग का दुर्बलकाय पक्षी है। इसके सिर तथा गर्दन पर लालरत मिश्रित भूरे रंग के छींटे होते हैं। पूँछ का मध्यवर्ती पतत्र (पर) कुन्द सलाई सा लम्बोतरा होता है। चोंच पतली, लम्बोतरी तथा थोड़ी सी मुड़ी होती है। गले में प्रमुख रूप का काला कंठा बना होता है। नर और मादा एक रंग-रूप के होते हैं। यह जोड़े या झुंडों रूप में पाया जा सकता है।

भारत दिव्यक का प्रसार-क्षेत्र सारा भारत है। आसाम में दूसरी जाति का दिव्यक होता है। यह मैदानी भागों के अतिरिक्त पहाड़ों में भी नीलगिरि में ६००० फुट की ऊँचाई तक तथा हिमालय में ५००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। सीलोन में १००० फुट की ऊँचाई तक ही पाया जाता है। यह बारहमासी पक्षी है परन्तु कुछ स्थानान्तर नियमित रूप से करता है। कुछ स्थानों में सन्तानोत्पादन काल की शुष्क ऋतु में रहता है तथा आर्द्र ऋतु में दूसरे स्थानों में रहता है। इसका आहार मुख्यतः कीट हैं। यह आकाश में मँडराते रहकर या किसी वृक्ष की डाल से तीव्र गति से सीधे उड़कर कीटों को पकड़ता है। इसकी बोली

मीठी और लम्बे सुर की होती है जो उड़ान के समय सतत् उच्चारित होती है। किसी जलाशय या नदी के ऊपर इन पक्षियों के झुंड पतिंगों का शिकार करते हुए जैसी मधुर ध्वनि से वायु को गुञ्जरित करते रहते हैं वैसा मधुर गायन या सुन्दर पक्षियों का दृश्य अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकता। यह बन बागों, बस्तियों तथा ऊजड़ मैदानों में भी पाया जाता है। यह बहुत साहसी और निडर होता है।

इसका जननकाल फरवरी से मई तक है। यह उपनिवेश रूप में घोंसले बनाता है। कगारों, बाँधों, सूखे नालों आदि में इसका विवर डेढ़ इञ्च गोला तथा एक फुट से लेकर छः फुट तक गहरा होता है। रेतीली मिट्टी में चपटे तल पर ही बिल खुदी होती है। चार से सात तक श्वेत अंडे देता है। नर और मादा दोनों ही विवर बनाने और शिशु पोषण में साथ देते हैं।

विवर का छिद्र पहले निम्नगामी होता है, परन्तु थोड़ी गहराई तक जाने के बाद फिर ऊपर की ओर उठता है। अन्तिम छोर पर अंडा देने का स्थान होता है। उसमें कोई अस्तर नहीं दिया होता। किन्तु प्रायः एक ही विवर कई वर्षों तक प्रयुक्त होने से कीड़े पतिंगों के अवशेष बिछे पड़े रहते हैं।

नीलपुच्छ दिव्यक

स्था० नाम—बड़ा पतरिंगा

आकार—पङ्ख —५$\frac{१}{२}$ इंच से कुछ कम, मध्यवर्ती पूँछ—५ या ५$\frac{३}{४}$ इंच, पार्श्ववर्ती—३$\frac{१}{२}$ इंच, गुल्फ—$\frac{१}{२}$ इंच, चोंच —१$\frac{१}{२}$।

नीलपुच्छ दिव्यक (बड़ा पतरिंगा) बुलबुल के आकार का पक्षी है। रङ्ग रूप लगभग भारत दिव्यक सा होता है। उससे कुछ बड़ा आकार होता है तथा रङ्ग में कुछ भेद होता है। इसकी आँखों से होकर एक पट्टी आगे की ओर चोंच तक तथा पीछे की ओर ऊपरी गर्दन की

ओर तक जाती है। कण्ठ का रङ्ग पीला होता है। अग्रवक्षस्थल भूरा होता है। इसके नर और मादा का रङ्ग-रूप एक समान होता है। यह छोटे झुंडों में विरल वृक्ष के खुले मैदानों, तालाबों, झीलों आदि के निकट पाया जाता है। शिशु पक्षी का रङ्ग वयस्कों की अपेक्षा विशेष धुँधला होता है। विशेषकर कण्ठ तथा वक्षस्थल पर धुँधला रङ्ग होता है।

नीलपुच्छ दिव्यक का प्रसार सारे भारत में हैं। बर्मा, मलाया तथा जावा में भी पाया जाता है। हिमालय में ३००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसका निवास प्रायः वैसे ही क्षेत्रों में पाया जाता है जिसमें प्रख्यात भारत दिव्यक पाया जाता है किन्तु यह अधिक वृक्षाच्छा-दित मैदान तथा झीलों और नदियों का पड़ोस पसन्द करता है। इसकी उड़ान अधिक तीव्र होती है। यह पतिंगों पर अधिक वेग से झपट्टा मारता है। इसका शब्द टि-ट्यू टि ट्यू सा ज्ञात होता है। आहार तथा स्वभाव साधारण पतरिंगे समान हैं।

यह अपने सारे प्रसार क्षेत्र में प्रायः अप्रैल में अण्डे देता है। नदियों तथा सोतों के कगारों में विवर बनाता है। जहाँ मानसून के जलविप्लव की पहुँच से परे विवर बनाता है, वहाँ मध्य जून तक अण्डे देता है। यह उपनिवेश रूप में विवर बनाता है। १०० जोड़े तक पक्षी एक स्थान पर विवर बना सकते हैं। मधुमक्खी, बर्रे आदि को यह विशेषतया आहार बनाता है किन्तु निकट सुलभ किसी भी कीट को खा सकता है। इसकी बिल आड़ी होती है। उसका व्यास दो इंच और गहराई चार फुट होती है। बिल की अन्तिम छोर पर अंडे का स्थान होता है जिसमें कभी-कभी हलका अस्तर दिया होता है। बिल बनाने अण्डा सेने तथा चारा चुगाने में नर-मादा दोनों भाग लेते हैं।

रक्तशीर्ष दिव्यक

आकार—पङ्ख—४ या ४½ इंच, पूँछ—३¼ इंच, गुल्फ—½ इंच से कम, चोंच—१¼ इंच से कुछ अधिक।

रक्तशीर्ष दिव्यक बुलबुल के आकार का पक्षी है। इसे प्रख्यात भारत दिव्यक (हरियल) तथा नीलपुच्छ दिव्यक (बड़ा पतरिंगा) के मध्यवर्ती आकार का समझना चाहिए। यह बहुत कुछ बड़े पतरिंगे सा होता है, परन्तु पूँछ में अधिक लम्बे मध्यवर्ती पतत्र (पर) का अभाव होता है, वह पूँछ के शेष परों के आकार का ही होता है। सिर तथा ऊपरी पीठ का रङ्ग चटक बादामी होता है। ठुड्डी तथा कण्ठ का रङ्ग पीला होता है। इसके नर-मादा समान रङ्ग के होते हैं। यह बाग-बगीचों में सूखी डालियों पर छोटे झुंडों रूप में पाया जाता है।

इसका प्रसार क्षेत्र उत्तर में बेलगाँव तक पश्चिमी तट, सिंहल, हिमालय की तराई में देहरादून से पूर्वी आसाम तक का भाग, पूर्वी बङ्गाल (पाकिस्तान), उड़ीसा, बर्मा, एँडमन, मलाया, हिन्दचीन तक है। मध्यवर्ती भारत में दुर्लभ है।

रक्तशीर्ष दिव्यक को भारत का मुख्य पक्षी नहीं कहा जा सकता किन्तु जिन थोड़े स्थानों में इसका प्रसार है, वहाँ यथेष्ट संख्या में पाया जाता है। यह झुंडों में रहकर चारा चुगता है। सन्तानोत्पादन ऋतु के अतिरिक्त समयों में एक दर्जन से लेकर सौ तक के झुंड में पाया जाता है। यह केवल उड़ते समय ही अपना आहार प्राप्त करता है। उड़ते ही समय मधुर शब्द भी करता रहता है। यह किसी भी प्रकार के कीट को अपना आहार बनाता है। सड़े-गले नालों के सूखने पर उसमें दिखाई पड़ने वाली क्षुद्र इल्लियों तथा अंडों को भी खा जाता है। प्रातःकाल बहुत पहले जगने वाले पक्षियों में इसकी गणना की जा सकती है।

यह आसाम तथा हिमालय की तराई में अप्रैल मई में अंडे देता है। दक्षिण भारत में फरवरी मार्च में ही अंडे देता है। इसका विवर यथेष्ट लम्बा होता है। चार या छः फुट से लेकर १० फुट तक लम्बा होता है। अन्तिम छोर पर अंडा देने का स्थान आठ इंच लम्बा और छः इंच चौड़ा होता है। यह उपनिवेश रूप में विवर नहीं बनाता। नर-मादा दोनों अंडा सेते हैं।

—:०:—

प्रियात्मज वंश

प्रख्यात धूसर वाध्रीणस

स्था० तथा पर्याय नाम—चरकोतरा धानमार, धंद, धनेल, लामदार (हि०) सेलागिल्ली (सागर), पतियल, धनेश (वंग०)

आकार—पक्ष—४½ से ५ इंच तक, पूँछ—१०½ इंच से १२ इंच तक, गुल्फ—१¾ इंच, चोंच—३½ इंच से ४½ इंच तक।

धूसर वाध्रीणस (धनेश) का आकार भंगी चील (धोबिया चील) के बराबर होता है। इसका शरीर भद्दा, स्लेटीधूसर रङ्ग का होता है। चोंच श्वेत तथा काले रङ्ग की और मुड़ी हुई होती है। उसके ऊपर एक विचित्र उभाड़ होता है। पूँछ लम्बी तथा गावदुम (क्रमशः पतली होती जाने वाली) होती है। नर और मादा के रूप समान होते हैं। यह छोटे झुंडों में हलके जङ्गलों या पुराने वृक्ष के बागों में पाया जाता है। दक्षिण भारत में मलाबार तट पर एक दूसरी जाति का वाध्रीणस होता है जिसकी चोंच पर ऊपरी उभाड़ नहीं होता।

धूसर वाध्रीणस का प्रसार क्षेत्र सारे भारत में है। सारे आसाम तथा राजपूताने के कुछ भागों में नहीं पाया जाता। यह खुले तथा वृक्षाच्छादित मैदानों और पतझड़ वाले जङ्गलों में पाया जाता है। पुराने आम, बरगद, पीपल आदि वृक्षोंयुक्त बागों में प्रायः पाया जाता है। गाँवों, बस्तियों के निकट के बागों में इन वृक्षों पर रहता है। घनी वाटिकाओं में भी मिलता है। यह वृक्षजीवी पक्षी है। यह जोड़े या ५,६ के झुंड में मिलता है। पूरा झुंड एक वृक्ष से उड़ कर दूसरे वृक्ष पर उड़ जाता दिखाई पड़ सकता है। आहार की प्रचुरता के स्थल में हरियल

(हरिताल), मैना, बुलबुल आदि पक्षियों के साथ मिला-जुला बहु-संख्यक एकत्र मिलता है।

इसका जननकाल मार्च से जून तक है। इसका घोंसला विचित्र होता है। किसी पुराने वृक्ष कोटर में मादा बन्दी बन जाती है। अपने बीट को चोच के चपटे पार्श्व भाग से द्वार पर लिपटा कर चिकनाती जाती है। सूखने पर वह सीमेंट सा बन जाता है। केवल एक छोटा द्वार छूटा रहता है। अंडा सेने की पूर्ण अवधि तक नर पक्षी बड़े परिश्रम से उसे चारा ला-लाकर चुगाता रहता है। शिशु उत्पन्न होने पर मादा बाहर निकल आती है और द्वार पर की दीवाल पुनः बना लेती है। नर-मादा दोनों शिशु को चारा चुगाते हैं।

—: ० :—

पुत्रप्रिय वंश

भारत पुत्र प्रिय (हुदहुद)

स्था० या पर्याय नाम—हुदहुद (हि०) सुतर (महारा०)

आकार—पङ्ख—५ से ६½ इञ्च तक, चोंच—१¾ इञ्च से २½ इञ्च तक।

भारत पुत्रप्रिय (हुदहुद) का आकार मैना के बराबर होता है। इसका रङ्ग हल्का भूरा होता है। पीठ, पङ्ख तथा पूँछ पर जेब्रा की तरह श्वेत तथा काली आड़ी पट्टियाँ होती हैं। सिर के ऊपर पंखे के समान फैली शिखा होती है। चोंच लम्बी, पतली तथा थोड़ी मुड़ी होती है। नर और मादा के समान रूप होते हैं। यह अकेले या जोड़े रूप में घिरे वृक्षों के मैदान में प्रायः भूमि पर पाया जा सकता है।

हुदहुद की पाँच उपजातियाँ होती हैं:—(१) पाश्चात्य या योरोपीय (२) भोट (३) भारत (४) सिंहल तथा (५) ब्राह्म। इनमें पाश्चात्य तथा भोट उपजातियों में शिखा के पिछले पतत्र (पर) छोरों से कुछ नीचे श्वेत धब्बेयुक्त होते हैं। साधारण रङ्ग धूमिल तथा न्यूनलाल भूरा होता है। अन्य तीनों उपजातियों में शिखर के पिछले पतत्र (पर) भी साधारण ही होते हैं। श्वेत धब्बे युक्त नहीं होते। साधारण रङ्ग गहरा और अधिक लाल भूरा होता है। इन तीनों में सिंहल उपजाति का रङ्ग अत्यधिक लाल भूरा और गहरा होता है, भारत उपजाति का रङ्ग अत्यधिक मटमैला होता है। ब्राह्म उपजाति का रङ्ग मध्यवर्ती होता है।

भारत पुत्रप्रिय (हुदहुद) मैदानों तथा ५००० फुट ऊँचाई तक के पहाड़ों का पक्षी है। सिक्किम में ७००० फुट ऊँचाई तक पाया जाता

हैं। दक्षिण में कदाचित् बम्बई के खानदेश तक प्रायः भारत उपजाति होती है उसके दक्षिण सिंहल उपजाति पाई जाती है। यह घास के



भारत पुत्रप्रिय (हुदहुद)

मैदान, बाग-बगीचों तथा बस्तियों में मिलता है। पृथक-पृथक जोड़े रूप में या सन्तानों को मिला कर ४,५ के झुंड में पाया जाता है। यह भूमि पर ही चारा चुगता रहता है। चोंच से मिट्टी, सड़ी-गली पत्ती आदि हटा कर चारा प्राप्त करता रहता है। अपने छोटे पैरों पर यह चल या

दौड़ सकता है। भूमि पर यह झूमता चलता है। मिट्टी खोदते समय यह शिखा दबा लेता है और एक कुदाल की तरह सिर के पीछे एक बिन्दु पर क्षेपित कर देता है। उत्तेजित होने पर शिखा तुरन्त खड़ी कर फैला देता है। बाधा पड़ने पर थोड़ी दूर ही उत्तेजना में उड़कर फिर बैठ जाता है और शिखा खड़ी कर लेता है। "हू पो पो, हू पो पो" कहने के समान ध्वनि उत्पन्न करता है। रह-रहकर या निरन्तर दस मिनट तक यही ध्वनि दुहराता रह सकता है। किसी वृक्ष से शब्द करने पर यह झुक जाता है और सिर ऐसे मोड़ लेता है कि चोंच वक्षस्थल पर आड़ी लेट सी जाती है। उसी समय पूँछ भी झुकाता है और शरीर के नीचे मोड़ लेता है मानो शरीर के दोनों छोरों को मिलाने का प्रयत्न कर रहा हो। दूसरे समयों में प्रत्येक शब्दोच्चार के समय सिर आगे झटक देता है, शिखा रह-रहकर उठाता और गिराता है। इसके अतिरिक्त अन्य रूप के शब्द भी उत्पन्न कर सकता है।

इसका जननकाल फरवरी से अप्रैल तक है। किसी दीवाल, छत, बालखाने के निम्नतल, या किसी सड़ी गली डाल, ठूंठ आदि का कोई छिद्र ढूँढ़ लेता है। उसमें भद्दे रूप से चिथड़े, बाल, ऊन तिनके, आदि का अस्तर दे देता है। एक बार में पाँच या छः अंडे देता है। अंडे श्वेत रङ्ग के होते हैं किन्तु सेने पर बदरङ्ग होते जाते हैं। मादा निरन्तर अंडा सेती रहती है। उसे नर भोजन लाकर देता रहता है। घोंसला गन्दगी से भर जाता है और बहुत बदबू करता है। नर और मादा दोनों शिशु को चारा चुगाते हैं।

———

अलिल वंश

भारत ग्राम दुर्बल

स्था० तथा पर्याय नाम०—अबाबील, बबिला (हि०), पकोली (महारा०)
हवा बिलबिल (सहारनपुर)

आकार—पङ्ख—५ या ५$\frac{1}{2}$ इञ्च, पूँछ—१$\frac{1}{2}$ या १$\frac{3}{4}$ इञ्च, गुल्फ—$\frac{1}{2}$ इच से कम, चोंच—$\frac{1}{4}$ इञ्च।

भारत ग्राम दुर्बल (अबाबील) का आकार गौरैया से कुछ छोटा होता है। यह भस्मीय काले रङ्ग का पक्षी है। कण्ठ तथा कटि प्रदेश श्वेत होते हैं। पूँछ छोटी, चौकोर होती है। पङ्ख लम्बे और पतले होते हैं। नर और मादा का रूप समान होता है। यह बस्ती में झुंड रूप में उड़ता रहता है।

भारत ग्राम दुर्बल का प्रसार क्षेत्र प्राय: सारे भारत में हैं। दक्षिण भारत में बेलगाँव के दक्षिण नहीं पाया जाता।

भारत ग्राम दुर्बल बारहमासी पक्षी है। कुछ स्थानीय परिवर्तन कर सकता है। ४००० फुट से ऊँचे स्थानों को कदाचित् नवम्बर से फरवरी या प्रारम्भ मार्च तक छोड़ देता है। इसका आहार पतिंगे तथा मच्छड़ ही अधिकांश है। उन्हें सन्ध्याकाल देर तक खाता मिलता है। यह बस्तियों के निकट रहने वाला पक्षी है। खंडहरों में भी रहता है। पुराने किले या उजड़े मकान, देवालय आदि में यह अपना स्थान बनाने की विशेष इच्छा रखता है। इसका मुँह अधिक फैला होता है। इसलिए उड़ते रहकर ही शिकार पकड़ने में सुगमता होती है। इसका स्वभाव तथा शिकार पकड़ने का ढङ्ग अबाबील समान होता है, परन्तु इन दोनों की रचना में विशेष अन्तर होता है। ग्राम दुर्बल की चारों पादांगुलियाँ आगे की ओर ही होती हैं, अतएव इसके कहीं बैठ सकने की सम्भावना ही नहीं हो

सकती। अतएव यह कहीं खुले स्थान् में बैठा न दिखाई पड़ेगा। पङ्ख लम्बोतरे तथा पतले होने से इसे निरन्तर उड़ने में सहायक होते हैं। किसी दीवाल या खुरदरे तल पर चढ़ते समय दोनों पङ्ख एक दूसरे को पार कर फाँस बनाते हैं।

इसका जननकाल फरवरी से सितम्बर तक है। दो बार अण्डे देता है। दीवाल के कोनों, छतों, आदि में उपनिवेश रूप में घोंसले बनाता है। पर, घास आदि जुटा कर घोंसले बनाता है। अपने थूक से उन्हें जोड़ देता है। एक स्थान पर ही बराबर घोंसले बनाता है। २ से ४ तक अण्डे एक बार देता है। नर-मादा दोनों घोंसला बनाते और शिशु पोषण करते हैं।

वंग ताल दुर्बल

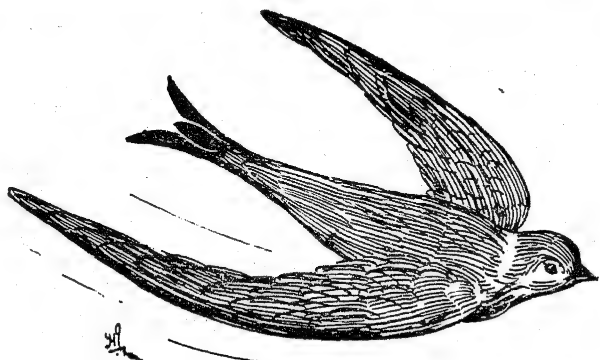
स्था० नाम—बतासिया, ताड़ी अबाबील, तालचटा, पट्टा दिडली

आकार—पङ्ख—४½ या ४¾ इञ्च, पूँछ—२½ इञ्च, गुल्फ—लगभग तिहाई इञ्च, चोंच—चौथाई इंच से भी कुछ कम।

वंग ताल दुर्बल का आकार गौरैया से कुछ छोटा होता है। वह अधिक कृशकाय होता है। पङ्ख लम्बे और पतले होते हैं। इसका रङ्ग भस्मीय धूसर होता है। पूँछ पतली होती है। जिसमें दूर तक दो फाँके होते हैं। जब यह उड़ता रहता है, पतले आकार के लम्बे पङ्खों का आकार धनुष-सा ज्ञात होता है जिसके बीच में इसका कृशकाय शरीर बाण समान ज्ञात होता है। नर और मादा का समान रूप होता है। यह ताल वृक्षों युक्त मैदानों में झुंड रूप में उड़ता रहता है।

वंगताल दुर्बल का प्रसार क्षेत्र सारा भारत है। जहाँ कहीं ताड़ का वृक्ष पाया जाता है, यह पक्षी रहता है। यह बड़े नगरों के मध्य या बस्तियों में भी शिकार पकड़ता मिल सकता है। यह विशेषकर ताड़ (ताल) वृक्ष का प्रेमी होता है। कहीं विरल ताड़ वृक्ष हो तो उस पर यह

अवश्य पाया जायगा । ताड़ समान अन्य वृक्षों पर भी पाया जा सकता है । सन्तानोत्पादन काल के अतिरिक्त समयों में तो मैदानों में कहीं भी पाया जा सकता है । इसकी उड़ान भारत ताल दुर्बल समान होती है किन्तु यह नीची उड़ान ही उड़ता आगे-पीछे भी भागता है । कुछ शब्द



बंगताल दुर्बल

भी करता रहता है । सन्तानोत्पादन काल में अपने ही ताल वृक्ष पर घंटों मँडराता चारों ओर उड़ता रहता है । ताल वृक्ष से इसको क्यों ममता है, इसका कारण ज्ञात नहीं हो सका है । उड़ान के समय पूँछ में गहरी फाँक स्पष्ट प्रमुख रूप से दिखाई पड़ती रहती है ।

इसका जननकाल विभिन्न स्थानों में विभिन्न होता है । इसका घोंसला आधे प्याले समान दो इंच लम्बा होता है । वह पर तथा वनस्पतियों के नर्म रेशों से बनता है । उनको पक्षी अपने थूक से चिपका देता है । ताल पत्र के निम्न तल में किसी पत्रीय आखात में वह आबद्ध होता है । भूमि से उसे देखना कठिन है । एक बार में दो या तीन अंडे देता है । अण्डों का रङ्ग निर्मल श्वेत होता है । आसाम में छप्परों में लगे ताल पत्रों में इसके घोंसले गारो तथा नागा पहाड़ियों में मिल सकते हैं ।

कपोत वंश

वंग हरिताल

स्था० नाम—हरियल (हि०) हैथा या बोर हैथा (आसाम) दखरेप गडेया (कच्चरी)

आकार—पूर्ण शरीर—१४ इंच, पङ्ख—८ इंच, पूँछ—४$\frac{3}{4}$ इंच, चोंच—$\frac{3}{4}$ इंच, गुल्फ—१ इंच।

वंग हरिताल या हरियल का आकार कबूतर के बराबर होता है। इसका शरीर पुष्ट, पीले, हल्के हरे, भस्मीय धूसर रंग का होता है। स्कंध पर दूधिया धब्बा होता है। कलौंछ पङ्ख पर पीले रङ्ग की खड़े रूप की प्रमुख पट्टियाँ होती हैं। नर और मादा समान होते हैं। अन्य सभी कबूतरों से इसमें एक यह विभिन्नता होती है कि पैरों का रङ्ग लाल नहीं होता, बल्कि पीला होता है। बाग-बगीचों में झुंड रूप में रहता है। विशेषतया पीपल तथा बरगद के गोदे (फल) खाता है।

वंग हरिताल का प्रसार क्षेत्र उत्तर प्रदेश की पश्चिमी सीमा से लेकर पूर्वी आसाम तक हिमालय के अंचल में है। दक्षिण की ओर मध्य प्रदेश तथा उत्तरी उड़ीसा में कभी-कभी मिल जाता है। बङ्गाल और बिहार में यथेष्ट पाया जाता है। हरिताल की अन्य उपजातियाँ होती हैं। ब्राह्म हरिताल और वंग हरिताल का वक्षस्थल पीला किन्तु उदर धूसर रङ्ग का होता है, परन्तु दक्षिण हरिताल का वक्ष तथा उदर दोनों पीले रङ्ग के होते हैं। वंग हरिताल में ऊपरी पङ्ख-आच्छादक तथा पूँछ का आधार भाग पीलेपन रङ्ग के होते हैं। किन्तु ब्राह्म हरिताल में ऊपरी पङ्ख-आच्छादक का रङ्ग धूसर होता है।

हरिताल पक्षी खुले किन्तु हरियाली के स्थानों में पाये जाते हैं। उपवनों तथा बस्तियों तक में दिखाई पड़ते हैं। घने जंगलों के मध्य भी जब तब पाये जाते हैं जहाँ इसके प्रिय फल प्राप्त हों। मैदानों तथा तराइयों में भी रहते हैं। ४००० फुट की ऊँचाई पर भी गोदे खाते पाये गये हैं। इनका बसेरा लेने का विशेष अड्डा होता है। छोटे या बड़े झुंडों में वहाँ जाकर बसेरा लेते हैं। इनका शब्द मनुष्य के मुख से ध्वनित सीटी की तरह होता है। इनका आकार सभी प्रकार के फल, विशेषतया गोदे हैं। दाने, जड़ें तथा कली भी खाते हैं। तोते की तरह मक्के के तने पर चढ़कर दाने खा जाते हैं। इनका जनन काल मार्च से जून तक है। पत्तों में छिपा हल्का घोंसला बनाते हैं। कई घोंसले साथ हो सकते हैं। दो श्वेत चमकीले अण्डे एक बार में देते हैं। नर-मादा दोनों शिशु पालन करते हैं।

भारत हरित कपोतक

स्था० नाम—राम घुग्घू, राज घुग्घू (बंग०) मुटिरेपुका, सिलकेप, (आसाम)

आकार—पूरे शरीर की लम्बाई—१० से १०$\frac{३}{४}$ इंच तक, पङ्ख—६ या ६$\frac{१}{३}$ इंच, गुल्फ—१ इंच, चोंच—$\frac{२}{३}$ इंच।

हरित कपोतक के भाल तथा नेत्र के ऊपर बड़ी भौं (महा भ्रू) समान बने चिह्न का रंग श्वेत होता है। यह शीर्ष तथा पश्चशीर्ष की ओर नीला धूसर हो जाता है। शीर्ष गर्दन, स्कन्ध तथा अग्र वक्ष के पार्श्व भाग गहरे अँगूरी लाल होते हैं। निम्न वक्ष तथा उदर धूमिल होते हैं। पीठ, पङ्खाच्छादक, भीतरी गौण पङ्ख चमकीले हरे होते हैं। पङ्ख की किनारी मुख्य पङ्ख, बाहरी गौण पङ्ख, तथा दीर्घतर पङ्ख आच्छादक भूरे होते हैं। कटि धूसर होता है, पूँछ भूरी, ऊपरी पुच्छाच्छादक गहरा स्लेटी धूसर, पङ्ख का अधोतल चमकीला ताम्र रक्त वर्ण होता है। मादा के

माथे के महाभ्रू का रंग न्यून श्वेत होता है। शीर्ष तथा पश्चशीर्ष के भूरे रंग में लालपन की पुट होती है। मध्यवर्ती पुच्छ अधिक लाल युक्त भूरे होते हैं, केवल बाह्यतम पतत्र (पर) धूसर होते हैं।

भारत हरित कपोतक जंगल का पक्षी है। पतझड़ की वृक्षावली में भी रहता है। यह भूमि पर तीव्र चल सकता है। बड़ी फुर्ती दिखा कर दीमक को खाता है। दीमक को छोड़ कर इसका आहार अनेक प्रकार के अन्न तथा फल हैं।

इसका जननकाल उत्तर पूर्व भारत तथा बर्मा में मार्च से मई तक है किन्तु ऐंडमन, निकोबार, तथा तनासरिम में जनवरी-फरवरी है। इसका प्रसार क्षेत्र पश्चिमी तट पर त्रावणकोर से बम्बई तक तथा हिमालय में काश्मीर और कमायूँ से पूर्वी आसाम तक, बंगाल, बिहार, उड़ीसा और पूर्वी तट पर मछलीपट्टम तक है।

अपने प्रसार क्षेत्र में यह मैदानी भागों से लेकर २००० फुट की ऊँचाई तक अण्डे देता है।

भारत नीलगिरि पारावत

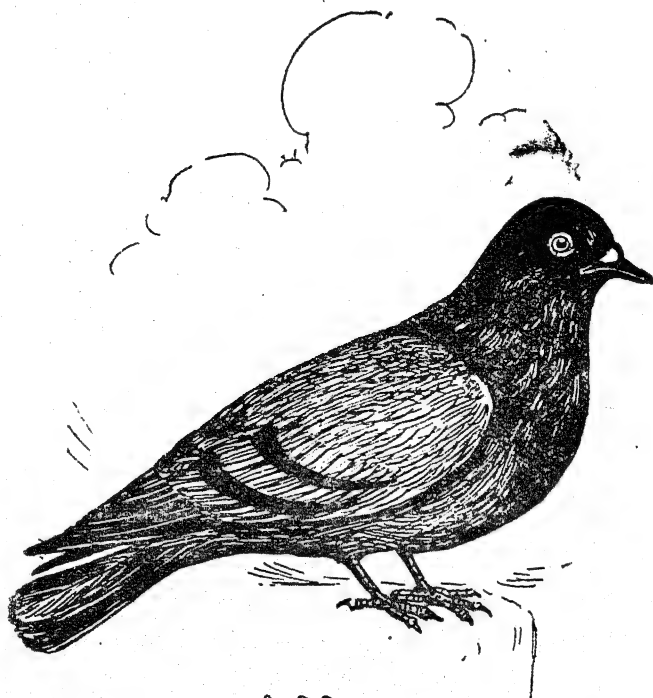
स्था० नाम—कबूतर (हि०) परेरा (महा०) कबत्तेतर (बिहा०)

आकार—पङ्ख (नर)—८½ इंच से ९½ इंच तक; (मादा)—८ या ९ इंच।

नीलगिरि कबूतर का आकार कौवे से कुछ छोटा होता है। इसका रङ्ग स्लेटी धूसर होता है। वक्षस्थल के चारों ओर गर्दन पर चमकीले हरे या नीलारुण रङ्ग की झलक होती है। पङ्ख पर गहरे रङ्ग की दो पट्टियाँ होती हैं। नर और मादा समान होते हैं। टीलों तथा मकानों के ऊपर इसके झुंड तथा उपनिवेश होते हैं।

नीलगिरि पारावत का प्रसार क्षेत्र सारा भारत है। इसकी तीन उपजातियाँ हैं: (१) साधारण (२) सिंधु (३) भारत। इनमें पहली

दो उपजातियों में निम्न पृष्ठ का रङ्ग धूमिल तथा अग्र पृष्ठ से विभिन्न होता है। किन्तु भारत नीलगिरि पारावत में निम्नपृष्ठ, अग्रपृष्ठ तथा कटि का रङ्ग समरूपी होता है। साधारण उपजाति में निम्न पृष्ठ तथा कटि का रङ्ग श्वेत होता है किन्तु सिंधु उपजाति में धूमिल धूसर होता है। सामान्य उपजाति का प्रसार क्षेत्र योरप से लेकर एशिया माइनर,



नीलगिरि पारावत

काकेशश तथा उत्तरी ईरान है। भटक कर कोई पक्षी उत्तर-पश्चिम भारत या पकिस्तान की ओर चला आता है। द्वितीय उपजाति सिंधु

नीलगिरि पारावत का प्रसार क्षेत्र तुर्किस्तान, पूर्वी तथा दक्षिणी ईरान, अफगानिस्तान, तथा पश्चिमी पाकिस्तान और काश्मीर है।

भारत नीलगिरि सारे मैदानी भागों में पाया जाता है। केवल अत्यधिक आर्द्र स्थलों में नहीं रहता। दक्षिण भारत में ४००० फुट ऊँची पहाड़ियों तक पाया जाता है किन्तु हिमालय में २००० फुट से अधिक ऊँचाई पर नहीं पाया जाता। यह रात को जनन क्षेत्रों में ही बसेरा लेता है। इसका मुख्य आहार अन्न है। फल, फूल, मूल आदि भी खाता है। उसकी उड़ान तीव्र और सीधी होती है। भूमि से बहुत अधिक ऊँचाई पर नहीं उड़ता। भूमि पर तीव्रता से सुविधापूर्वक चल तथा दौड़ सकता है।

यह साल भर जनन करता है। किन्तु विशेषकर फरवरी से अप्रैल तक अण्डे देता है।

भारत चित्रपक्ष कपोतक

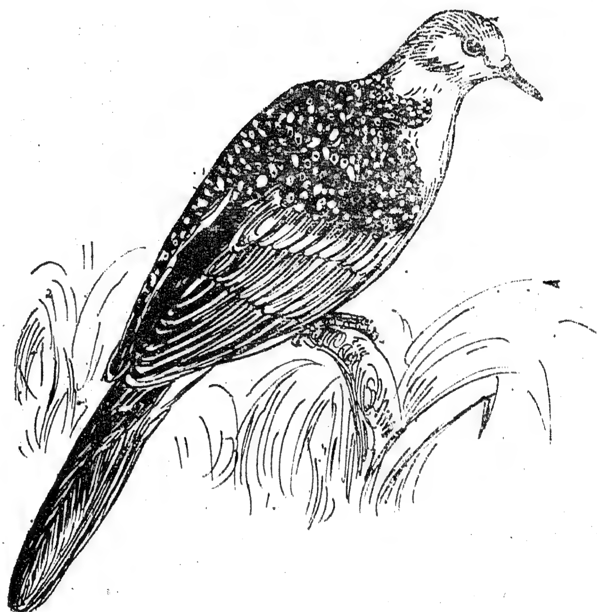
स्था० नाम—चित्रक, फाखता, चित्ता फाखता, पेंडकी, चिट्टा, पंडुक (हि०) चवल घुग्घू, तेलिया घुग्घू (वंग०) कवला (महा०)

आकार—पूरा शरीर—११ इंच, पङ्ख लगभग ६ इंच, पूँछ—लगभग—५$\frac{3}{4}$ इंच, गुल्फ—१ इंच से कम, चोंच—$\frac{1}{2}$ इंच से कुछ अधिक।

चित्रपक्ष कपोतक का आकार मैना और कबूतर का मध्यवर्ती होता है। ऊपरी तल श्वेत रङ्ग की प्रमुख छींटों युक्त गुलाबी भूरा और धूसर रंग का होता है। पिछली गर्दन पर श्वेत बुदकियों युक्त काला धब्बा होता है। नर और मादा समान होते हैं। खुले हरियाली के मैदानों, खेतों या रास्तों पर चमकीले रूप में इसके दल या जोड़े पाये जा सकते हैं।

भारत चित्रपक्ष कपोतक सारे भारत में पाया जाता है। चित्रपक्ष की चार उपजातियाँ हैं: (१) भारत (२) ब्राह्म (३) चीन (४) सिंहल। प्रथम तीन के पङ्ख की लम्बाई सवा पाँच इंच से अधिक होती है। परन्तु

चौथी उपजाति सिंहल में इससे न्यून होती है। चीन उपजाति पङ्ख आच्छादक पर मटमैले मुर्चा समान लाल रङ्ग के धब्बे होते हैं किन्तु



भारत चित्रपच्च कपोतक

भारत और ब्राह्म उपजाति में अँगूरी लाल रंग के धब्बे होते हैं। इनमें भी रंग का भेद है। भारत उपजाति की पीठ पर प्रमुख रूप के धूमिल लाल भूरे धब्बे होते हैं किन्तु ब्राह्म उपजाति में पीठ पर धब्बे धुँधले होते हैं या बिल्कुल नहीं होते। बंगाल में ब्राह्म उपजाति होती है, चीन उपजाति बर्मा में मिली-जुली मिल सकती है।

भारत चित्रपच्च अत्यन्त सूखे भाग छोड़ कर सर्वत्र पाया जाता है।

जल यथेष्ट सुलभ होने पर ७००० फुट की ऊँचाई तक अण्डे देता है। ८५०० फुट ऊँचाई तक भी कभी-कभी मिलता है। यह निडर पक्षी है। बस्ती और वाटिकाओं में मनुष्य के निकट चलता-फिरता रह सकता है। यह जोड़े रूप में क्रू क्रू क्रू शब्द करता मिलता है। यह कबूतर की भाँति पङ्ख फड़फड़ा लेने के बाद भूमि से ऊपर उड़ता है। इसका आहार दाने, फलों के बीज, दीमक है। घरों में घोंसला बना होने पर रोटी आलू आदि फेंकने पर खा लेता है। यह वृक्ष तथा झाड़ियों में बहुत नीचे घोंसले बनाता है। घर के बरामदों, झरोखों आदि में घोंसले मिलते हैं। प्रायः दो श्वेत अण्डे एक बार में देता है।

भारत धवल कपोत

स्था० नाम० धवर फाखता, पेंड़की, पंडुक, गूगी (हि०) दावलों, ढौंला (बिहा०) कलथक, ककलाकी, पंक घुग्घू (वंग०) पित्था होला (महा०)

आकार – पूरा शरीर—१३ या १३$\frac{1}{2}$ इंच, पङ्ख—५$\frac{3}{5}$ इंच तक, पूँछ—५$\frac{1}{2}$ इंच तक, गुल्फ—१ इंच, चोंच—$\frac{3}{4}$ इंच।

धवल कपोत का आकार कबूतर से कुछ छोटा होता है। इसका रंग धूमिल धूसर भूरा होता है। पिछली गर्दन पर प्रमुख रूप का काला आधा पट्टा होता है। नर और मादा समान होते हैं। खुले खेतों में जोड़े या झुँड रूप में रहता है।

धवल कपोत मलाबार तथा उत्तरी पूर्वी हिमालय सरीखे अत्यन्त आर्द्र स्थलों को छोड़कर शेष सारे भारत में पाया जाता है। भारत के बाहर सारे पूर्वी योरप में टर्की तक मिलता है। पश्चिमी एशिया में भारत तक सर्वत्र मिलता है। चीन होकर जापान तक भी पाया जाता है।

धवल कपोत बारहमासी पक्षी है। यह खुले मैदान और खेत पसन्द करता है। दोपहर की गर्मी में विश्राम करने योग्य झाड़ियाँ बाग आदि

होने पर सूखे भू-भाग विशेष पसन्द करता है। कटीली झाड़ियाँ, बबूल तथा ढाक के जंगल में बसेरा लेता है। बस्तियों में निडर होकर घुस जाता है। जोड़े या छोटे झुंडों में भूमि पर अन्य कपोतों में मिला-जुला पाय जाता जा सकता है। धान की खूटियों या ज्वार के नये बोये खेत में इसका भारी झुंड पहुँचकर दाना चुगता है। इसका मुख्य आहार दाना तथा बीज है।

धवल कपोत प्रायः साल भर अंडे देता पाया जाता है। छोटे क्षुपों, झाड़ियों आदि में थोड़े बहुत डंठल जुटाकर मामूली घोंसला बना लेता है। दो श्वेत चमकीले अण्डे एक बार में देता है। नर-मादा दोनों शिशु पालन में हाथ बटाते हैं।

भारत अरुण कपोत

स्था० नाम—सेरोती फाखता, गिरवी फाखता, बीकी (हि०)
गुलाबी घुग्घू, इथ्युगिया घुग्घू , तुमा खुरी (बंग०)

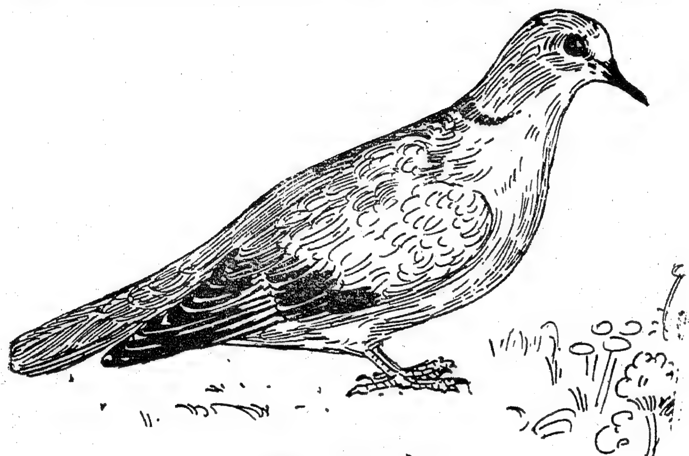
आकार—पूर्ण शरीर—९ या ९½ इञ्च, पङ्ख—५ या ५½ इञ्च, गुल्फ—¾ इञ्च, चोंच—½ से अधिक।

अरुण कपोत का आकार मैना के बराबर होता है। नर में गुलाबी युक्त लाल आवरण होता है किन्तु मादा के शरीर का आवरण धूमिल भूरापन युक्त धूसर होता है। मादा धवल कपोत का प्रतिरूप ही जान पड़ती है। खुले कृषि क्षेत्रों या फसल कटे खेतों में इसका छोटा दल पाया जा सकता है।

भारत अरुण कपोत का प्रसार सारे भारत में है। तीन उपजातियों में एक भारत अरुण कपोत है। दूसरी ब्राह्म और तीसरी सिक्किम उपजाति है। भारत अरुण कपोत विशेषकर अधोतल में अधिक धूमिल होता है। ब्रह्म अरुण कपोत अपेक्षाकृत गहरे तथा लाल रङ्ग का होता है,

विशेषकर अधोतल में। सिक्किम उपजाति इन दोनों की मध्यवर्ती होती है और पूर्वी नैपाल, सिक्किम से आसाम तक ब्रह्मपुत्र के उत्तर भाग में पाई जाती है। ब्रह्म उपजाति का प्रसार आसाम, ब्रह्मपुत्र के दक्षिण, बर्मा हिन्दीचीन ऐंडमन तथा चीन तक है।

भारत अरुण कपोत खुले कृषि क्षेत्रों का रहने वाला है। बस्ती के बिल्कुल निकट कदाचित् ही दिखाई पड़े। यह एकाकी या जोड़े रूप में



भारत अरुण कपोत

पाया जाता है। अन्य कपोतों के साथ बड़े झुंड में भी रह सकता है। यह दाना बीज तथा वानस्पतिक पदार्थ भूमि पर चुगा करता है। इसे 'ग्रूगुर्रगू' ग्रूगुर्रगू' की ध्वनि दुहराते पाया जाता है। इसकी न्यून संख्या ही मिलती हैं।

इसका जननकाल साल भर है। डंठलों तथा पतली लकड़ियों का मामूली घोंसला बना होता है। भूमि से १० से लेकर २० फुट ऊँची डाल की फुनगी पर घोंसला बना पाया जाता है। २ श्वेत अंडे एक बार में देता है। घोंसला बनाने में नर और मादा दोनों भाग लेते हैं।

कुकल वंश

भारत ककर (भटतीतर)

स्था० नाम—भटतीतर, वख्त तीतर, कुमातित, ककर, डंगर, बैरी (हि०) पकोराडे (महा०)

आकार—पङ्ख—७ या ७$\frac{३}{४}$ इञ्च, (मादा—७ इञ्च), पूँछ ५ या ६ इञ्च, गुल्फ—१ इञ्च, चोंच—$\frac{१}{२}$ इञ्च।

भटतीतर या भारत ककर का आकार कबूतर से कुछ छोटा होता है। यह पीलापन युक्त बालुका के रङ्ग का कबूतर समान पक्षी है छोटे पैर पतत्र (पर) युक्त होते हैं। पूँछ लम्बोतरी और नोकीली होती है। मादा में यह विभिन्नता होती है कि ठुड्डी को छोड़कर शेष सारा शरीर काले रङ्ग की रेखाओं और पट्टियों युक्त होता है। निम्न वक्षस्थल पर एक काली पट्टी होती है। खुले सूखे मैदानों में इसका झुंड भूमि पर चारा चुगते पाया जाता है।

भटतीतर खुले स्थानों में सर्वत्र पाया जा सकता है। अर्द्ध मरुभूमि तथा पूर्ण मरुभूमि में भी रहता है। यह प्रातः सूर्योदय के दो घंटे पश्चात् तथा संध्या को सूर्यास्त के पहले जल पीता है। इसके २०० तक के झुंड मिलते हैं। इसका आहार दाने, बीज, अङ्कुर आदि है।

इसका जनन-स्थान खूटी वाले खेत या परती, बञ्जर भूमि, मरुस्थल आदि विस्तृत खुले स्थान हैं। वर्ष के प्रत्येक मास में इसके अंडे प्राप्त हो सके हैं किन्तु विशेषतया मार्च से मई तक अण्डे देता है। दक्षिण भारत में कदाचित् जनवरी से मार्च तक मुख्यतया अण्डे देता है। अधिकांश पक्षी वर्ष में दो बार अण्डे देते हैं। भूमि को खुरच कर थोड़ी गहरी जगह बना कर दो या तीन अण्डे एक बार में देता है। नीचे कोई अस्तर नहीं होता तथा ऊपर से भी किसी पत्थर ढोके या पौधों का आड़ नहीं होता। नर और मादा दोनों अंडा सेते हैं।

विष्किर वंश

प्रख्यात मयूर

स्था० नाम—मोर (हि०) लंदुरी (महा०) मञ्जा, मनीर
(उड़िया) मोयर, मोयरा (आसाम)

आकार—यथार्थ पूँछ की छोर तक पूर्ण शरीर—३½ फुट, किन्तु पुच्छाच्छादक की छोर तक ६ या ७½ फुट; पङ्ख—१८ या १९ इञ्च, पूँछ (यथार्थ)—१५½ या १८ इञ्च, गुल्फ—५ या ५½ इंच, चोंच—१½ या १¾ इंच

पूँछ को छोड़कर मोर का आकार गिद्ध के बराबर होता है। पूँछ तीन या चार फुट लम्बी होती है। वयस्क नर मयूर की बहुरञ्जित लम्बी पूँछ एक दर्शनीय वस्तु है। वास्तव में वह बहुरञ्जित अंश पूँछ नहीं होता, बल्कि पुच्छ आच्छादक ही होता है। मादा में यह रङ्गीन पुच्छाच्छादक नहीं होता। पूँछ भूरे रङ्ग की चित्रित होती है। उसकी निचली गर्दन पर चमकीला हरा रङ्ग होता है। नर की तरह उसके सिर पर भी शिखा होती है। यह पर्वतों के अंचलों और मैदानों के पतझड़ वाले वृक्षों के बन-उपबन में पाया जाता है। गाँवों के निकट भी अर्द्ध जंगली रूप में रहता है।

मयूर का प्रसार क्षेत्र सारा भारत है। हिमालय में ५,००० फुट ऊँचाई तक पाया जाता है। ब्राह्म मयूर इससे भिन्न जाति का है। भारत मयूर की शिखा की ऊपरी छोर अर्द्ध चन्द्राकार सी फैली होती है परन्तु ब्राह्म मयूर की शिखा आधार तल से ऊपर की ओर जाने पर शङ्कु या लट्टू की नोक समान नोकीली हो जाती है।

भारत मयूर हिमालय की निचली पहाड़ियों में ७००० फुट तक मिल जाता है। आसाम में २५०० फुट की ऊँचाई तक ही मिलता है। यह वन पत्ती है। इसके निकट पहुँचना कठिन है किन्तु पालक बनने पर बस्ती में भी रह जाता है। यह चार से आठ तक के पारिवारिक झुंड में मिल सकता है। उड़ने में दुर्बल नहीं है, परन्तु मनुष्य से दूर भागने में पैरों का ही अधिक सहारा लेता है। यह सर्वभत्ती होता है। प्रायः दाने, कलियाँ, छोटे फल आदि खाता है किन्तु किसी भी कीट, मेढक, गिरगिट आदि को खा लेता है। इसके दल में चार-पाँच मादा हो सकती हैं। यह बहुपत्नीवाद की वृत्ति रखता है। ऊँचे वृत्तों पर रात को बसेरा लेता है। प्रातः होते ही वर की ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। इसका जनन काल जनवरी से अक्टूबर तक है। नर पूँछ उठाकर नृत्य द्वारा मादा को वशीभूत करता है। तीन से पाँच तक अंडे एक बार उत्पन्न होते हैं।

रक्त वन कुक्कुट

स्था० नाम—जंगली मुर्गा, बन मुर्गा (हिं०) बन कोकरा, बन कुकरा, (वंग०) (बन कुक्कुट) (आसाम)

आकार—पङ्ख—८ या ९$\frac{3}{4}$ इंच, पूँछ—१२ या १५ इच, गुल्फ—३ इंच, चोंच—$\frac{3}{4}$ इच से अधिक। पादशल्य–एक या दो इच तक।

रक्त वन कुक्कुट का आकार ग्राम कुक्कुट (घरेलू मुर्गी) के बराबर होता है। नर का रूप मादा से कुछ भिन्न होता है। मादा में शरीर का रग रेखाओं युक्त भूरा अधोतल लाल भूरा होता है। झाड़-झङ्खाड़ तथा शाल के जंगलों में छोटे झुंडों में रहता है। सिंहल में एक दूसरी जाति का वन कुक्कुट पाया जाता है जिसमें नर का वत्तस्थल काला की जगह लाल मिश्रित नारंगी होता है।

रक्त वन कुक्कुट उत्तरी भारत में विशेषकर हिमालय की निम्न पहा-

ड़ियों और तराई में ५००० फुट की ऊँचाई तक रहता है। दक्षिण में पूर्वी मध्य प्रदेश से लेकर गोदावरी नदी तक पाया जाता है। शाल के वृक्षों के जङ्गल में इसका निवास होता है। यह सभी घरेलू मुर्गों का पूर्वज है। यह छोटे झुंडों में रहता है। एक जंगली मुर्गे के साथ चार-पाँच मुर्गियों का झुंड बना होता है। दिन की धूप में विश्राम करता है, प्रातः सन्ध्या ही चारा चुगता है। यह आदमी से दूर भागने वाला पक्षी है। मुख्य आहार दाने, अङ्कुर आदि हैं। कीड़े, केंचुए तथा सरीसृप खा सकता है। बाँस के बीज खाना बहुत पसन्द करता है। नर वन कुक्कुट की बाँग प्रातः तड़के सुनाई पड़ती है। सन्ध्या को बसेरा लेते समय भी बाँग देता है। बाँग के पहले पङ्ख को शरीर से पार्श्व भाग में फड़फड़ाता है, एक नर की बाँग सुनते ही दूसरा नर शब्द करने लगता है।

इसका जननकाल मार्च से मई तक है। घनी झाड़ी या घासों की आड़ में भूमि पर छिछला गड्ढा बना कर अण्डे देता है। उसमें सूखी घास का अस्तर भी रहता है। पाँच या छः अण्डे एक बार दिए जाते हैं। केवल मुर्गी अण्डा सेती है।

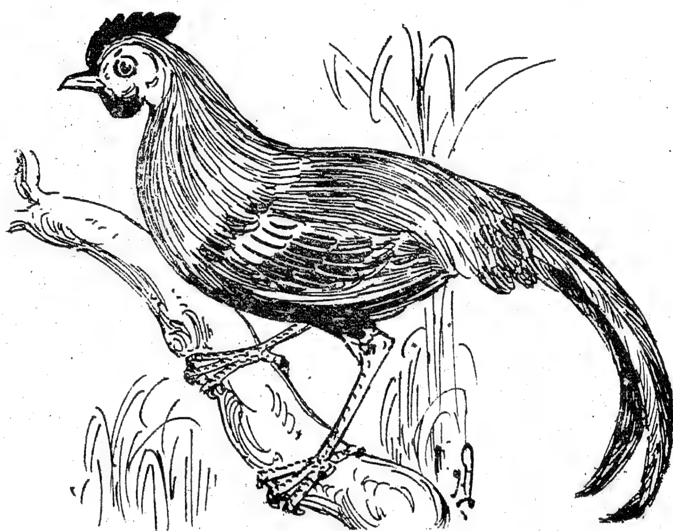
यवग्रीव वन कुक्कुट

स्था० नाम—जंगली मुर्गा (हि०) रन कोंबड़ा (महा०)

आकार—पङ्ख—९ या १० इंच, पूँछ—१३ या १५ इंच, गुल्फ—३ इञ्च, चोंच—१ इंच।

यवग्रीव वन कुक्कुट (जंगली मुर्गा) का आहार घरेलू मुर्गा के बराबर ही होता है। नर का रंग रेखित रूप में धूसर होता है। पूँछ हँसिया के आकार की मटमैले काले रङ्ग की होती है। मादा का वक्षस्थल लाल भूरे का जगह श्वेत होता है और कलौंछ रेखाएँ होती हैं। जंगलों या झाड़-झङ्खाड़ युक्त मैदानों में अकेल, जोड़े रूप में या छोटे झुंडों में रहता है।

यवग्रीव वन कुक्कुट का स्वभाव अधिक समाजप्रिय नहीं होता। यह जोड़े या छोटे पारिवारिक दल रूप में रहता है। बाँस के बीज फलने



यवग्रीव वन कुक्कुट (जंगली मुर्गा)

पर उस क्षेत्र में अन्य वन कुक्कुटों की भाँति बीजों को खाने के लिए भारी संख्या में जुटता है। यह अधिक झगड़ालू वृत्ति नहीं रखता।

मुख्य जननकाल फरवरी से मई तक है किन्तु पश्चिमी नीलगिरि में अक्टूबर से दिसम्बर तक अण्डे देता है। किन्तु अण्डे या नवजात शिशु प्रायः किसी भी मास में पाए जाते हैं। चार से सात अण्डे तक एक बार में देता है किन्तु दस तक या केवल तीन अण्डे भी एक बार में उत्पन्न मिल सकते हैं।

इसका प्रसार क्षेत्र मध्यवर्ती भारत के जङ्गलों में पश्चिम आबू पर्वत

तथा बड़ौदा से लेकर पूर्व में गोदावरी के मुहाने तक की सीध के दक्षिण भारत में कुमारी अन्तरीप तक है। यह बाहरमासी पक्षी है।

लोहित कुक्कुट

स्था० नाम—छोटी जंगली मुर्गी (हि०) चकोत्री, ककोत्री कस्तूर (महा०)

आकार—पक्ष—६ या ६½ इंच, पूँछ—५ या ६ इंच, गुल्फ—२ इंच, चोंच—¾ इच से कुछ अधिक।

लोहित कुक्कुट (छोटी जंगली मुर्गी) का आकार घरेलू मुर्गी के तीन-चौथाई विकसित रूप के बराबर होता है। मादा का रंग नर की अपेक्षा कुछ विभिन्न होता है। मादा का ऊपरी तल लाल भूरा या बादामी होता है तथा उस पर बारीक काली पट्टियाँ तथा धब्बे होते हैं। उसका वक्षस्थल धूमिल बादामी लाल भूरा होता है, जिस पर काले धब्बे होते हैं। नर के पैरों में दो से लेकर चार तक नोकीले शल्य होते हैं। मादा में प्रायः एक पैर पर एक और दूसरे पर दो नोकीले शल्य होते हैं। आँख के चारों ओर नर और मादा दोनों में ही नग्न लाल धब्बा होता है। पथरीले क्षुपों से आच्छादित नालों में भूमि पर इसके जोड़े या पारिवारिक दल पाए जाते हैं।

लोहित कुक्कुट का प्रसार अनियमित सा है। हिमालय की तराई तथा मध्यवर्ती और दक्षिणी भारत में जहाँ तहाँ पाया जाता है। यह किसी विशेष रूप के वृक्षों का जंगल नहीं ढूढ़ता। हरियाली की आड़ भर प्राप्त होने पर रह सकता है। झाड़-झङ्खाड़, बाँस तथा पतझड़ वाले विरल वृक्षों के जंगल में पाया जाता है। विषमतलीय तथा नालों और खड्डों सहित जंगल अधिक पसन्द करता है। भूमि पर सड़ती-गलती पत्तियों के नीचे इल्लियों को ढूँढ़कर खाता रहता है। यह उड़ने की

अपेक्षा पैरों पर दौड़ना ही पसन्द करता है विवश होने पर उड़कर शाखाओं पर जा बैठता है।

इसका जननकाल अधिकतर जनवरी-फरवरी है किन्तु प्रायः साल भर अण्डे मिलते हैं। अक्टूबर से लेकर दिसम्बर तक अण्डे नहीं देता। भूमि पर अण्डे देता है। कोई घोंसला नहीं बना होता। केवल मिट्टी कुरेद कर छिछला गड्ढा बना लेता है। कभी-कभी घास-पात का अस्तर उसमें होता है। तीन से लेकर पाँच तक हल्के पीले रंग के अण्डे एक बार देता है।

धूसर वर्तिका

स्था० नाम—बटेर, बड़ा बटेर, गगुस बटेर (हि०) लोरवा, बड़ा गगा, बड़ गम्मी, गुरगऊ (महा०)

आकार—पूर्ण शरीर—७ या ८ इंच, पङ्ख—४ या ४½ इंच, पूँछ १½ इंच, गुल्क—१¼ इंच चोंच—½ इंच।

धूसर वर्तिका (बटेर) का आकार पूँछ के बिना पन्डुक के बराबर होता है। केवल १५ दिन के मुर्गी के बच्चे के बराबर भी मान सकते हैं। यह स्थूलकाय, धूमिल भूरे रंग का पक्षी है। तीतर के समान रूप होता है। इसमें पूँछ का सर्वथा अभाव सा होता है। शरीर के ऊपरी तल पर भाले के आकार समान मटमैले पीले रंग की रेखाएँ होती हैं तथा लाल भूरे और काले रंग के अनियमित ढंग के धब्बे और पट्टियाँ भी होती हैं। नर में कण्ठ पर काला पतवारनुमा चिन्ह होता है। मुख्य पङ्ख की बाहरी किनारी मटमैले पीले रंग की होती है। खेतों या घास के मैदान में जोड़े या झुंड रूप में मिलता है।

धूसर वर्तिका का प्रसार क्षेत्र मध्य तथा दक्षिणी योरप, उत्तरी अफ्रीका, बैकाल तक उत्तरी तथा मध्य एशिया तक, दक्षिण में अरब, ईरान, अफगानिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान तक तथा भारत में मनी–

पुर तक उत्तरी तथा मध्यवर्ती प्रदेश हैं। अधिकांश धूसर वर्त्तिका बारह-मासी हैं। मार्च से मई तक भूमि पर छिछले गड्ढों में इसके अण्डे उत्तरी भारत में मनीपुर तक मिल सकते हैं, परन्तु शीतकाल में बाहरी देशों से भी बहुसंख्यक धूसर वर्त्तिका का हमारे देश में आगमन हो जाता है। काश्मीर में ४००० से ६००० फुट की ऊँचाई तक झीलों के चारों ओर घास के मैदानों में यह बहुसंख्यक रूप में जनन करता है। ६ से लेकर १४ अण्डे तक एक बार में देता है।

कृष्णोरस वर्त्तिका

स्था० नाम—धूसर वर्त्तिका के ही सब नाम

आकार—पङ्ख—३$\frac{३}{४}$ इंच, पूँछ—१$\frac{१}{४}$ इंच, गुल्फ १ इंच, चोंच—$\frac{१}{२}$ इंच।

कृष्णोरस वर्तिका का नाम कृष्ण रङ्ग के उरस् या वक्ष के कारण पड़ा है। कृष्णवक्ष भी कह सकते हैं। इसका आकार धूसर वर्त्तिका से कुछ छोटा होता है। इसका रङ्ग-रूप धूसर वर्त्तिका से मिलता-जुलता है। केवल इतना अन्तर होता है कि वक्ष तथा कभी-कभी मध्यवर्ती उदर-स्थल काला होता है। मादा धूसर वर्त्तिका समान ही होती है। धूसर वर्त्तिका में मुख्य पङ्ख के वृन्तीय पतत्रों में लाल भूरी आड़ी पट्टियाँ होती है परन्तु कृष्णोरस के नर और मादा दोनों में इनका अभाव होता है। यह जोड़े या छोटे झुंडों में खेतों या घास के मैदानों में भूमि पर चारा चुगता रहता है।

यह सारे भारत में पाया जाता है। हिमालय में ६००० फुट की ऊँचाई तक मिलता है। यह बारहमासी है किन्तु कुछ स्थानीय परिवर्तन करता है। यह लम्बी घास के मैदान तथा खड़ी फसल के खेतों में रहता है। वाटिकाओं तथा अहातों में थोड़ी घास की आड़ मिलने पर घुस

आता है। घास के आर्द्र मैदानों तथा धान के खेतों में भी पहुँचता है। यह बारहमासी पक्षी ही है, परन्तु ऋतु के सुभीते के अनुसार स्थानीय रूप में यथेष्ट स्थान परिवर्तन करता है। यह 'ह्विच ह्विच' का शब्द उच्चारित करता है। सन्तानोत्पादन काल में तो यह शब्द दिन भर सुनाई पड़ता है, परन्तु अन्य समयों में प्रातः-सायं ही सुनाई पड़ता है।

इसका जननकाल मार्च से अक्टूबर तक है किन्तु अधिकांश अंडे वर्षा प्रारम्भ होने पर जून के बाद दिए जाते हैं। ६ से ८ अंडे तक एक बार देता है। उनका हल्का पीला रङ्ग होता है तथा अनेक रूपों के भूरे रङ्ग के धब्बे होते हैं। केवल मादा ही अंडे सेती है।

वन वर्त्तीर

स्था० नाम—लवा, छोटा बटेर

आकार—पूर्ण शरीर—७ इंच, पङ्ख—३ या ३$\frac{3}{4}$ इंच, पूँछ—१$\frac{1}{2}$ इंच, गुल्फ—१$\frac{1}{2}$ इंच, चोंच—$\frac{1}{2}$ इंच से कम।

इसका आकार कृष्णोरस वर्त्तिका के बराबर होता है। मादा के शरीर में अधोतल पर काली क्षुद्र पट्टियाँ नहीं होतीं। मादा के अधोतल का रङ्ग अंगूरी भूरा होता है। ठुड्डी तथा कण्ठ बादामी होते हैं। नर में ठुड्डी तथा कंठ के धब्बे का रङ्ग बादामी होता है।

वन वर्त्तीर भारत में सर्वत्र पाया जाता है। यह बारहमासी पक्षी है। मैदानी भागों तथा ४००० फुट ऊँची पहाड़ियों में रहता है। एक उपजाति शैल वर्त्तीर कहलाती है। इन दोनों उपजातियों के नर का वक्ष-थल काले तथा श्वेत रङ्ग की स्फुट पट्टियों युक्त होता है। वन वर्तीर के नर में कपोल तथा कण्ठ के बीच एक रेखा और आँखों के ऊपर की महा भ्रू प्रमुख रूप की होती हैं। पीठ पर पट्टियाँ नहीं होतीं, परन्तु शैल वर्तीर के नर में महा भ्रू और कपोलीय रेखाएँ या तो नाम मात्र की होती

है या बिल्कुल नहीं होतीं। पीठ पर लाल भूरे या हल्के पीले रंग की पट्टियाँ होती हैं।

दोनों उपजातियों की मादा में वक्षस्थल धूमिल अंगूरी या लाल भूरा पीला होता है। वन वर्तीर की मादा में मुख्य पंख के भीतरी जाल का रंग पूर्णतः भूरा होता है किन्तु शैल वर्तीर में उसका रंग धुँधले पीले से पट्टित या चित्रित रहता है।

वन वर्तीर यथेष्ट वृक्षाच्छादित स्थलों में पाया जाता है। हिमालय और काश्मीर में ४००० फुट तक तथा दक्षिणी भारत में ३५०० फुट तक पाया जाता है। शैल वर्तीर का प्रसार क्षेत्र दक्षिणी पूर्वी भारत में मद्रास से लेकर दक्षिण तक है। पश्चिम में मैसूर, त्रावनकोर, बम्बई, राजपूताना कच्छ, गुजरात, उत्तर प्रदेश तथा पञ्जाब के कुछ भागों में शुष्क स्थलों में पाया जाता है। कहीं दोनों उपजातियाँ मिली-जुली होती हैं।

वन वर्तीर खेतों की खूटियों, पथरीले घास के मैदान, पतझड़ वाले वृक्षों के खुले जंगल आदि को पसन्द करता है। खड़ी फसल के बीच नहीं रहता। ५ से लेकर २० तक के झुंड में रहता है। प्रायः झुंड बनाकर बसेरा लेता है।

यह भूमि पर घास-पात से ढककर अण्डे देता है। झाड़ी की आड़ में कहीं घोंसला बना होता है। ४ से ८ तक अण्डे एक बार देता है।

कृष्ण तित्तिर

स्था० नाम—काला तीतर (हि०) काले तेत्रा, तेत्रा (गढ़वाल)

आकार—पक्ष—६ या ६½ इंच, पूँछ—३ या ४¼ इंच, गुल्फ—२ इच, चोंच—१ इंच।

काला तीतर (कृष्ण तित्तिर) एक अर्द्ध विकसित साधारण मुर्गी के बराबर होता है। इसका शरीर हृष्ट-पुष्ट होता है। पूँछ ठूठनुमा होती

है। शरीर क रंग मुख्यत: काला होता है जिस पर श्वेत रंग की पट्टियाँ तथा धब्बे होते हैं। मादा का रंग धुँधला होता है। उसकी गर्दन पर भूरा धब्बा होता है तथा शरीर पर श्वेत और काले रंग की बुँदकियाँ और छींटे होते हैं। यह जलप्रचुर स्थानों तथा खेतों में एकाकी या जोड़े रूप में पाया जाता है।

कृष्ण तित्तिर का निवास क्षेत्र सारा उत्तर भारत है। तीन उप-जातियाँ होती हैं : (१) भारत (२) दक्षिण पारसीक तथा (३) कामरूप। भारत कृष्ण तित्तिर अधिक गहरे रंग का होता है और उत्तर भारत में पाया जाता है। दक्षिण पारसीक कृष्ण तित्तिर अधिक धुँधले रंग का होता है। वह दक्षिणी तथा दक्षिणी पूर्वी ईरान, ईराक से लेकर बिलो-चिस्तान, अफगानिस्तान और सिंध तक पाया जाता है। तीसरी उपजाति, कामरूप को सबसे गहरे रंग का पाया जाता है। यह पक्षी पूर्वी नैपाल, सिक्किम, आसाम आदि में पाया जाता है।

यह भव्य पक्षी जलप्रचुर स्थलों के झाड़-झङ्खाड़ों तथा लम्बी घास के मैदान का प्रेमी है। दो फुट से ऊँची कोई भी घास प्रिय है। दस फुट तक लम्बी घास के बीच भी रहता है। जल के निकट उगे नरकुलों या लम्बी घासों में ही रह सकता है। विरल पतझड़ीय वृक्षों के बन में भी रहता है किन्तु तीन या चार फुट लम्बी घास का मैदान विशेष रुचि-कर है। इसका मुख्य आहार बीज, दाने हैं किन्तु जड़मूल, कली, सब तरह के कीट, केचुए आदि भी खाता है।

इसका जननकाल अप्रैल से जुलाई तक है। भूमि पर छिछला गड्ढा बनाकर घास का अस्तर देता है। वह घोंसले का काम देता है, घास की जड़ों, झाड़ियों आदि में यह घोंसला होता है। ६ से ८ तक अंडे देता है।

चित्र तित्तिर

चित्र तित्तिर का आकार गौर तित्तिर सदृश अर्द्ध विकसित मुर्गी के

बच्चे बराबर लगभग तेरह इंच लम्बा होता है। इसका रंग काला होता है। पङ्ख तथा सिर पर कुछ लाल भूरा रंग होता है। शरीर पर श्वेत रंग की यथेष्ट स्फुट पट्टियाँ तथा धब्बे होते हैं। इसका रंग रूप मादा कृष्ण तित्तिर सा ही होता है किन्तु गर्दन पर बादामी धब्बा नहीं होता। इसके उड़कर भागने पर निचले पुच्छ आच्छादक का कलौंछ रंग पूँछ के दोनों ओर प्रदर्शित होता है तथा पङ्ख में बादामी रग भी स्पष्ट दृष्टि-गोचर होता है। मादा केवल रंगों में ही कुछ थोड़ी विभिन्नता रखती है। घास के मैदानों, खेतों आदि में अकेले या जोड़े रूप में पाया जाता है। जलखंड से अधिक दूर नहीं रहता।

चित्र तित्तिर की दो उपजातियाँ होती हैं: (१) दक्षिण चित्र तित्तिर (२) उत्तर चित्र तित्तिर। दक्षिणी उपजाति अधिक गहरे रंग की होती है। उसका अधोतल अधिक मटमैला लाल भूरा होता है। उत्तरी उपजाति अपेक्षाकृत धुँधली होती है। उसका अधोतल अधिक चमकीला धूमिल लाल भूरा होता है। दक्षिण चित्र तित्तिर का प्रसार क्षेत्र सिंहल तथा दक्षिण भारत है। पश्चिमी भाग में खानदेश से लेकर रायपुर, चाँदा होती हुई बिहार तक रेखा इस प्रसार क्षेत्र की उत्तरी सीमा है। इस सीमा के उत्तर के समस्त भारत में उत्तरी चित्र तित्तिर पाया जाता है।

यह पक्षी कृष्ण तित्तिर से मिलता है किन्तु अपेक्षाकृत सूखे भाग तथा खेतों के निकट रहता है। यह कुछ अधिक वृक्षजीवी है। केवल रात को ही वृक्षों पर बसेरा नहीं लेता बल्कि जब-तब दिन को भी वृक्ष की डालों पर पाया जाता है। प्रातः सन्ध्या तथा मेघाच्छन्न रहने पर दिन को शब्द करता है। सन्तानोत्पादन काल में विशेष मुखर बन जाता है। यह 'सुभान तेरी कुदरत' सा शब्द प्रतिध्वनित करता प्रतिभासित होता है। वृक्ष शाखा या उच्च टीलों से यह शब्द उच्चारित करता है। यह जोड़े रूप में मिलता है। झुंड नहीं बनाता। पारिवारिक दल हो सकता है। इसका जननकाल वर्षा ऋतु है। भूमि पर उथला गड्ढा घोंसले का

काम देता है। झाड़ी या ईख के खेतों या खड़ी फसल में इसका यह घोंसला बना मिलता है।

गौर तित्तिर

स्था० नाम—तीतर, राम तीतर, गोरा तीतर, सफेद तीतर

आकार—पङ्ख—६३/४ इंच, पूँछ—३१/२ इञ्च, गुल्फ—२ इंच से कम, चोंच—१ इंच से कम। (मादा का आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है।)

गौर तित्तिर का आकार चित्र तित्तिर समान होता है। हृष्टपुष्ट शरीर, ठूठनुमा पूँछ का पक्षी है। इसका रंग धूसर युक्त भूरा होता है काले तथा मटमैले पीले रंग के लहरिया धब्बे सारे शरीर पर फैले होते हैं। पूँछ में कुछ बादामी रंग होता है। नर और मादा समान होते हैं। खेतों तथा सूखे क्षुद्र क्षुपों के मैदान में जोड़े या दल रूप में पाया जाता है।

गौर तित्तिर की तीन उपजातियाँ हैं: (१) दक्षिण गौर तित्तिर (२) उत्तर गौर तित्तिर तथा (३) सिन्धु गौर तित्तिर। दक्षिण गौर तित्तिर अधिक गहरे रंग का होता है। कण्ठ का मध्य भाग रामरजीय होता है। उत्तर गौर तित्तिर अपेक्षाकृत धुँधला होता है। कण्ठ का मध्य उजला होता है। सिन्धु गौर तित्तिर अत्यधिक धुँधला होता है। परों का रंग प्रायः अधिक धूसर और न्यून बादामी होता है।

दक्षिण गौर तित्तिर का प्रसार क्षेत्र दक्षिण भारत है और उत्तर गौर तित्तिर का प्रसार क्षेत्र उत्तर भारत है। सिन्धु गौर तित्तिर का प्रसार क्षेत्र सिंध, बिलोचिस्तान, सीमान्त प्रदेश, अफगानिस्तान और ईरान है।

गौर तित्तिर का निवास खुले, सूखे मैदानों में होता है जहाँ घास

और झाड़ियाँ हों। घने जंगलों से दूर रहता है। यह चाहे जिस उप-जाति का हो, इसका स्वभाव न तो आर्द्रतम स्थल में रहने का है और न शुष्कतम स्थल का प्रेमी है। दलदलों, झीलों या बड़ी नदियों के आस-पास सूखी भूमि में अवश्य रहना पसन्द करता है। खेतों के बीच परती पड़े भागों को यह विशेष पसन्द करता है। बस्तियों के निकट जोड़े या पारिवारिक झुंड मिलते हैं। इस पक्षी का जोड़ा कदाचित् जीवन भर के लिए बनता है।

इसका जननकाल प्रायः वर्ष भर है। घास के बीच भूमि पर छिछले गड्ढे बनाकर घास का मामूली अस्तर देकर अंडा देता हैं। केवल मादा अंडा सेती है। परन्तु नर मादा दोनों शिशुपालन करते हैं।

—: ० :—

लाव वंश

प्रख्यात लाव

स्था० नाम—गुलू, गुंडलू, गुंड्रा, सलुई गुंड्रा

आकार—लाव—पङ्ख—३ या ३½ इंच, मादा का आकार नर से बड़ा होता है। उत्तरा खंड तथा पूर्वीय देश के लावों की जातियाँ आकार में कुछ बड़ी होती है।

प्रख्यात लाव की पहचान सहज है। वक्षस्थल पर काले तथा मट-मैले पीले रंग की आड़ी स्फुट पट्टियाँ होती हैं। साधारण पक्षियों में प्रायः नर का आकार मादा से कुछ बड़ा होता है परन्तु लाव या गुलू पक्षी में मादा का ही आकार नर से बड़ा होता है। उसका शरीर नर से अधिक बहुरञ्जित भी होता है। नर की ठुड्डी, कण्ठ तथा वक्षस्थल का उजलापन

युक्त मटमैला पीला रंग होता है। इस पक्षी को ठीक पहचानने के लिए पैर की उँगलियों पर ध्यान देना चाहिए। अन्य तीतर बटेरों में सामने की ओर तीन पादांगुलियों के अतिरिक्त पीछे की ओर भी एक पादांगुलि होती है परन्तु लाव पक्षी में इस पिछली पादांगुलि का अभाव होता है। झाड़ियों तथा घास के मैदानों में जोड़े या छोटे झुन्ड रूप में यह पाया जाता है।

लाव पक्षी भारत का बारहमासी है। हिमालय में भी ८००० फुट की ऊँचाई तक रहता है। इसकी कई उपजातियाँ हैं। साधारण या भारत उपजाति में ऊपरी तल निश्चित रूप से धुँधले रंग का होता है। ब्राह्म उपजाति में ऊपरी तल बहुत गहरे रंग का होता है।

लाव का निवास घने बनों तथा मरुस्थलों को छोड़ सर्वत्र है। खुले झाड़ी युक्त मैदानों तथा पतझड़ वाले वृक्षों के हल्के बन में प्रायः मिलता है। खेतों के पड़ोस में भी चारा चुगता है। तीन-चार पक्षियों के झुंड पाए जाते हैं। पैर की आहट निकट पाकर यह झट से उड़कर फिर कहीं निकट घास में छिप जाता है। उड़ान के समय पंख का धूमिल पीला स्कंधीय धब्बा दृष्टिगोचर हो जाता है। इसका आहार घास के दाने, अंकुर, अन्न तथा क्षुद्र कीट हैं।

इसका जननकाल वर्ष भर है। घोंसले के स्थान पर घास से मढ़ा छिछला गड्ढा भूमि पर होता है। तीन या चार धूसर रंग के अंडे एक बार में देता है।

—: ० :—

आविष्कारकों की कहानी

इन जीवन-कथाओं में उन वातावरणों का मनोरम चित्रण है जिनमें आविष्कारकों को रह कर अपनी अनुपम बुद्धि तथा कार्य-शक्ति का उदाहरण रखना पड़ा होगा। बेल, एडिसन, मारकोनी आदि के नाम तो हमें जब-तब सुनने को भी मिलते हैं; परन्तु हम यह नहीं अनुभव करते कि किस प्रकार अपने परिवार के सदस्यों से भी छिप कर, उनके तानों से बचने का उद्योग कर मारकोनी को रात दिन ऐसी कल्पना को मूर्त्त रूप देने का साहस रखना पड़ा जिसे आज बेतार का तार कहा जाता है। इन प्रसिद्ध नामों के अतिरिक्त अपने पुत्र को मनोरंजन की सामग्री देने के लिए वयोवृद्ध डनलप को अकस्मात् पहिये को ठोस हाल के स्थान पर वायुभरी रबड़ नली रखने की सूझ उस समय विशेष महत्त्व की भले ही न जान पड़ी हो; परन्तु आज हमें उस घड़ी की स्मृति विशेष उत्प्रेरणा का कारण होती है। फोर्ड को अपनी भीषण आर्थिक विपत्ति तथा दर्जनों अभियोगों में पराजय से साहस छोड़ देने का एक भी क्षण आ सका होता तो आज हम फोर्ड द्वारा निर्मित इतनी सस्ती जनसुलभ मोटर गाड़ियाँ न देख पाते। विलियम फ्रीज़ी ग्रीनी का नाम आज फिर से स्मृत किया जाने लगा है जिसने चलचित्र का आविष्कार कर संसार को विलक्षण मनोरंजन की सामग्री उपस्थित किया; परन्तु अपने जीवन में दिवालिया बन कर वह अनेक बार जेल की हवा खाता रहा। इसी तरह सभी कहानियाँ विलक्षण हैं।

मूल्य २) रु०

किताब महल ❋ प्रकाशक ❋ इलाहाबाद

विलुप्त जन्तु

चट्टान के अन्दर जीवों की ठठरी के अवशेष कैसे रह सकते हैं ? हाथी की ऊँचाई के बराबर कौन पक्षी होता था ? कौन-सा जन्तु ३० फीट तक ऊँचा होता था ? किस जानवर के जाँघ की हड्डी ६ फीट की पाई जाती थी ? कौन से भारी जंतु दो पैर पर चलते थे ? किस चिड़िया के फैले हुए पंख उसके शरीर को २५ फीट चौड़ा बना सकते थे ? पैर से साँस लेने वाला त्रिफंकांगी जंतु कैसा होता था ? पूँछ में भाले और पीठ पर हड्डियों की खड़ी ढालें किस जंतु के होती थीं ? छः सींगों और ८० मन बोझ का षट्शृङ्गी जंतु कब और कहाँ पैदा हुआ ?

ऐसी समस्याओं को समझने के लिए आप यह पुस्तक पढ़ें जिसमें ५० करोड़ वर्ष पूर्व से आज तक के उन जंतुओं का वर्णन है जिनका संसार से लोप हो गया। उनकी कहानी उपन्यास या जासूसी कथा से अधिक रोमांचक है। विलुप्त जंतुओं की कथा के साथ पृथ्वी की कहानी की झाँकी भी देखने को मिलेगी।

मूल्य २) रु०

किताब महल * प्रकाशक * इलाहाबाद

विलुप्त वनस्पति

अरबों वर्ष पूर्व किस प्रकार वनस्पतियों का उदय तथा विकास हुआ, बहुत से वर्ग किस प्रकार लुप्त हुए तथा उनसे उत्कृष्ट वनस्पति वर्ग उत्पन्न होते गए? वनस्पतियों की वृद्धि के साधनों का कैसे विकास हुआ? बीजाणु क्या है, बीजाणु की तथा बीजाणु के पश्चात् कैसे बीजों की उत्पत्ति हुई? पत्तियों का उदय कैसे हुआ? करोड़ों वर्ष पूर्व काल में (कारबोनिफ़ेरस) में कैसे घोर जंगल उत्पन्न होकर धरती की कोख में दब गये तथा पत्थर कोयले का जन्म दे सके? गोंडवाना देश की विचित्र स्थिति कैसी थी? जिह्वापत्री नामक जाति के वनस्पति क्यों इन गोंडवाना महादेश के भागों, भारत, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका आदि में ही मिलते हैं? यूरोप, उत्तरी अमेरिका आदि में वे क्यों नहीं मिलते? इसी प्रकार के विचित्र प्रश्नों का समाधान इस पुस्तक में पढ़ें।

मूल्य २)

किताब महल * प्रकाशक * इलाहाबाद

अच्छी पुस्तकें अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं

और

हम आपको आपके व्यक्तित्व के निर्माण-कार्य में यथाशक्ति सहायता प्रदान करने के लिए उत्सुक हैं। यदि आपका नाम अन्य हजारों ग्राहकों की भाँति हमारी उस सूची पर लिखा हुआ नहीं है, जिन्हें हम बराबर अपने नये प्रकाशनों की सूचना देते रहते हैं तो आज ही एक कार्ड अपने नाम पते सहित हमारे पास लिख भेजें। एक बार आपका कार्ड मिल जाने पर हम आपको नियमित रूप से विविध प्रकार के मनोरंजक साहित्य के—जिनमें उपन्यास, (जासूसी और सामाजिक) कहानी संग्रह तथा अन्य साहित्य आदि भी सम्मिलित हैं—नये प्रकाशनों की खबरें भेजते रहेंगे। अपने यहाँ के किसी भी पुस्तक-विक्रेता से हमारी पुस्तकें माँगें। अगर कोई दिक्कत हो तो सीधे हमें लिखें।

एक और परामर्श

(१) आप आजकल के बढ़े हुए डाकखर्च से परिचित ही होंगे। स्थिति यह है कि एक रुपये की पुस्तक डाक द्वारा मँगाने पर लगभग एक रुपया ही व्यय पड़ जाता है। इसलिए अपने यहाँ के पुस्तक-विक्रेता से अनुरोध कीजिये कि वह आपकी रुचि की पुस्तकें हमसे मँगाये। हम पुस्तक-विक्रेता को भी सुविधाएँ देंगे और आपकी भी बचत में सहायक होंगे।

(२) यदि कोई पुस्तक-विक्रेता आपके अनुरोध पर विचार न करे तो आप उसका नाम-पता हमें लिख भेजिये। आपकी सुविधा के लिए हम उनसे आग्रह करेंगे कि वे आप द्वारा माँगी गयी पुस्तकें अपने यहाँ रखें।

किताब महल ● प्रकाशक ● इलाहाबाद